दिसम्बर 2018

आई.एस.ओ. 9001: 2008 संगठन
मूल्य: ₹30

भाकृअनुप
ICAR

खेती

• इस अंक में •

कृषि में ड्रोन की बढ़ती भूमिका

अरहर उत्पादन में खरपतवार मल्चिंग से वृद्धि

भेड़ उत्पादन प्रणाली से भरपूर लाभ

www.icar.org.in

जलवायु परिवर्तन के अनुरूप करें संरक्षित खेती

दीपक चौहान[1], **मृगेन्द्र सिंह**[2], **पी.एन. त्रिपाठी**[3] और **अल्पना शर्मा**[4]
कृषि विज्ञान केन्द्र, शहडोल, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)

“ कृषि में स्थिरता प्राप्त करने के लिए फसलों का विविधीकरण करना अति आवश्यक हो गया है। कृषि में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के लिए किसानों के लिए खेती में लचीलापन लाना एवं जलवायु के अनुरूप फसलों का विविधीकरण अत्यंत जरूरी है। जलवायु परिवर्तन कृषि उत्पादन को सीधा प्रभावित कर रहा है। इसका प्रभाव तापमान, वर्षा और अन्य पारिस्थितिक तंत्र के साथ-साथ मृदा की नमी, कीट-व्याधियों और पादप रोगों पर सीधा पड़ता है। ”

पारंपरिक विधियों से खेती करने से प्राकृतिक संसाधनों में मृदा क्षरण होना एक गंभीर समस्या है। कृषि में उपयोग होने वाले पारंपरिक कृषि यंत्रों एवं तकनीकों की बजाय फसलचक्र के द्वारा भूमि के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों तथा अन्य जैविक कारकों की क्रियाशीलता भूमि में बढ़ाई जा सकती है। इसके साथ ही संरक्षित कृषि में मृदा जल रिसाव में भी वृद्धि होती है। इससे मृदा का क्षरण कम होता है, जिसके परिणामस्वरूप मृदा की ऊपरी सतह पर कार्बनिक पदार्थ बढ़ जाता है। इस प्रकार मृदा के तापमान तथा खरपतवारों की वृद्धि में कमी की जा सकती है। संरक्षित

आवरण पृष्ठ III पर जारी

[1]वैज्ञानिक (कृषि अभियांत्रिकी); [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख; [3]वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान); [4]वैज्ञानिक (गृह विज्ञान)

भाकृअनुप
ICAR

खेती

कृषि विज्ञान द्वारा ग्रामोत्थान
की मासिक पत्रिका

वर्ष: 71, अंक: 8, दिसम्बर 2018

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. अशोक कुमार सिंह** — अध्यक्ष
   उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. सतेन्द्र कुमार सिंह** — सदस्य
   परियोजना निदेशक
   कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. आर.सी. गौतम** — सदस्य
   पूर्व डीन
   भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
4. **डा. एस.के. सिंह** — सदस्य
   निदेशक
   राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग
   नियोजन ब्यूरो, नागपुर
5. **डा. वाई.पी.एस. डबास** — सदस्य
   निदेशक (प्रसार)
   जी.बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
   पंतनगर
6. **श्री सेठपाल सिंह** — सदस्य
   प्रगतिशील किसान
7. **श्री सुरेन्द्र प्रसाद सिंह** — सदस्य
   कृषि पत्रकार
8. **श्री अशोक सिंह** — सदस्य सचिव
   प्रभारी, हिन्दी संपादकीय एकक

संपादक
अशोक सिंह
संपादन सहयोग
सुनीता अरोड़ा

प्रधान प्रोडक्शन अधिकारी
डा. वीरेन्द्र कुमार भारती
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
अशोक शास्त्री

लेआउट डिज़ाइन
डा. वीरेन्द्र कुमार भारती
अशोक शास्त्री

व्यवसाय सम्पर्क सूत्र
सुनील कुमार जोशी
व्यवसाय प्रबंधक
दूरभाष: 011-25843657
E-mail: bmicar@icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12
एक प्रति: रु. 30.00 वार्षिक: रु. 300.00

E-mail: khetidipa@gmail.com

विषय-सूची

संपादकीय **स्मार्ट फार्मिंग,** अशोक सिंह

आवरण कथा
कृषि में ड्रोन की बढ़ती भूमिका 3
दिलीप कुमार कुशवाहा, तपन कुमार खुरा, एच.एल. कुशवाहा और इन्द्रमणि

उपाय
अरहर उत्पादन में खरपतवार मल्चिंग से वृद्धि 6
आर.के. सिंह

पशुपालन
भेड़ उत्पादन प्रणाली से भरपूर लाभ 9
प्रभात कुमार पंकज, डी.बी.वी. रमन, जी. निर्मला, के. सम्मी रेड्डी, पी. श्रीनिवास और संतराम यादव

जल संरक्षण
सीमित सिंचाई द्वारा गेहूं की सूखी बुआई 14
विनोद कुमार तिवारी[1], रमेश अमुले[2] और रानी अमुले

तिलहन क्रांति
जायद में मूंगफली उत्पादन 16
सर्वेश कुमार और आर.सी. शर्मा

टिकाऊ खेती
धान-गेहूं फसल प्रणाली में विविधीकरण 20
तेज राम बंजारा, जे. एस. बोहरा, सुशील कुमार और आशीष राय

पशु आहार
दीनानाथ घास है पशुओं के लिए पौष्टिक हरा चारा 23
सतेन्द्र कुमार, राजीव कुमार अग्रवाल, सुनील कुमार और एम.एम. दास

मृदा सुधार
मृदा प्रदूषण नियंत्रण में उपयोगी सूक्ष्मजीव 25
फूलचंद अमूले, पावन सिरोठिया और यू.एस. मिश्रा

प्रसंस्करण
अरंडी के विविध उपयोग 29
प्रद्युम्न यादव, के.एस.वी.पी. चंद्रिका, आई.वाई.एल.एन. मूर्ति और ए. विष्णुवर्धन रेड्डी

रोकथाम
सरसों के प्रमुख रोगों का प्रबंधन 32
कृष्णा अवतार मीना

मात्स्यिकी
मछुआरों की आय बढ़ाने वाली समुद्री संवर्धन प्रौद्योगिकियां 35
इमेल्डा जोसफ

कृषि कैलेण्डर
दिसम्बर के मुख्य कृषि कार्य 38
राजीव कुमार सिंह, विनोद कुमार सिंह, कपिला शेखावत, प्रवीण कुमार उपाध्याय और एस.एस. राठौर

बचाव
जलवायु परिवर्तन के अनुरूप करें संरक्षित खेती आवरण II और III
दीपक चौहान, मृगेन्द्र सिंह, पी.एन. त्रिपाठी और अल्पना शर्मा

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं, उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। लेखों में संस्तुत रसायनों के डोज का प्रयोग करने से पहले विशेषज्ञों से सलाह अवश्य लें।

संपादकीय

स्मार्ट फार्मिंग

हमारे देश में बढ़ती आबादी की आवश्यकता के अनुरूप खाद्यान्न जुटाने की समस्या बढ़ते खाद्यान्न भंडार के बावजूद समाप्त नहीं हुई है। कृषि उत्पादकता में अपेक्षा के अनुरूप बढ़ोतरी नहीं होना, जलवायु परिवर्तन, जल की कमी, प्राकृतिक विपदाओं का प्रकोप, किसानों की निर्धनता आदि जैसे तमाम कारण इस बाबत गिनाये जा सकते हैं। लेकिन यह भी वास्तविकता है कि मात्र फर्टिलाईजर, सिंचाई के लिए जल उपलब्धता और अन्य रसायनों के उपयोग को बढ़ाकर उच्च पैदावार की प्राप्ति करने के लक्ष्य तक नहीं पहुंचा जा सकता है। कृषि को अधिक उत्पादक बनाने और कृषक आय बढ़ाने के लक्ष्य को लेकर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अंतर्गत देशभर में कार्यरत 103 से अधिक कृषि अनुसंधान संस्थानों में कार्य किये जा रहे हैं। हाल के वर्षों की कृषि उपलब्धियां, इन्हीं कृषि वैज्ञानिकों के अथक परिश्रम का परिणाम हैं। फसल उपज में ही नहीं बल्कि सब्जी, बागानी फसल उत्पादन और पशुधन उत्पादकता में सुधार भी इन्हीं अनुसंधान उपलब्धियों का नतीजा है। परंपरागत कृषि पद्धतियों के स्थान पर उन्नत कृषि प्रणालियों को प्रगतिशील एवं समृद्ध किसानों द्वारा तेजी से अपनाया जा रहा है। कृषक समुदाय में वैज्ञानिक खेती के प्रति बढ़ती जागरूकता भी इसी बदलाव का सूचक है।

इसी क्रम में नई उपलब्धि है स्मार्ट फार्मिंग। स्मार्ट फार्मिंग में आईसीटी की आधुनिक तकनीकियों का समन्वयन कृषि कार्यों हेतु किया जाता है। इसमें अत्याधुनिक तकनीकियों का प्रयोग कर कृषि लागत को कम से कम रखते हुए सघन खेती की पद्धतियों को अपनाया जाता है। इनमें विशेष रूप से ड्रोन उपयोग, सेंसर फार्म आधारित मोबाइल परामर्श से संबंधित तकनीकियों का उल्लेख किया जा सकता है। यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि वैश्विक स्तर पर स्मार्ट फार्मिंग की वृद्धि दर 13 प्रतिशत से अधिक है। भारत सहित अन्य विकासशील देशों में खेती की यह नई अवधारणा धीरे-धीरे जोर पकड़ रही है।

इसके तहत न्यूनतम आदानों और सीमित भूमि का उपयोग करते हुए अधिकाधिक उपज प्राप्ति का लक्ष्य रखा जाता है। इसके लिए सही मात्रा में समस्त आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति पौधों को की जाती है। इन तत्वों की मात्रा का निर्धारण मृदा परीक्षण और पौधों की नवीन किस्मों के अनुसार किया जाता है। स्मार्ट फार्मिंग की अवधारणा को तीन हिस्सों में विभाजित कर देखा जा सकता है। इनमें प्रबंधन सूचना प्रणाली, सटीक कृषि (प्रीसिजन एग्रीकल्चर) और स्वचालित कृषि (ऑटोमेशन और राबोटिक्स) शामिल हैं। इस तकनीक का सफलतापूर्वक प्रयोग पारिवारिक कृषि और जैविक खेती आदि में किया जा सकता है।

विशेषज्ञों की राय में स्मार्ट फार्मिंग के माध्यम से आधुनिक तकनीकियों के इस्तेमाल द्वारा कृषि उत्पादों की गुणवत्ता एवं मात्रा में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि की जा सकती है। इक्कीसवीं शताब्दी के किसानों को अब जीपीएस, सॉयल स्कैनिंग, डेटा मैनेजमेंट तथा इंटरनेट सरीखी प्रौद्योगिकियां सुलभ हैं और वे इनके द्वारा कीटनाशकों एवं उर्वरकों की दक्षता को काफी हद तक बढ़ा सकते हैं। इस प्रकार कृषि लागत में कमी कर अपनी आमदनी में बढोतरी कर सकते हैं। पशुपालन के क्षेत्र में भी प्रत्येक पशु की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उनके लिए पोषक आहार की समुचित मात्रा उपयुक्त समय पर देने की व्यवस्था की जा सकती है। इसका सकारात्मक प्रभाव पशुधन के बेहतर स्वास्थ्य एवं उत्पादकता के रूप में देखा जा सकता है।

यह कहना कतई अतिश्योक्ति नहीं होगा कि आने वाले समय में भारतीय कृषि परिदृश्य में भी स्मार्ट फार्मिंग का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल देखने में आ सकता है। कृषकों की आय बढ़ाने में भी इसकी अहम् भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता है।

(अशोक सिंह)

कृषि में ड्रोन की बढ़ती भूमिका

दिलीप कुमार कुशवाहा, तपन कुमार खुरा, एच.एल. कुशवाहा और **इन्द्रमणि**
कृषि अभियांत्रिकी संभाग
भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

"समय व जलवायु परिवर्तन के साथ-साथ खेती में जहां समस्याओं का आकार व स्वरूप बदला है, वहीं किसानों पर लागत में कमी लाते हुए अधिक उत्पादन का दबाव भी बढ़ा है। किसानों की आय को दोगुनी करने के ध्येय को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिक खेती के नए तौर-तरीके अपनाए जा रहे हैं। इनमें अत्याधुनिक कृषि मशीनों तथा अन्य उपकरणों का विशेष तौर पर जिक्र किया जा सकता है। क्रमिक विकास के फलस्वरूप अन्य मशीनों और यंत्रों की भांति ड्रोन भी विकास के उस मुकाम पर पहुंच चुका है, जहां उसे खेती के प्रयोग में भी लाया जा सकता है।"

भारत द्वारा हरित क्रांति के माध्यम से खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता का लक्ष्य प्राप्त कर विगत काल में महत्वपूर्ण जीत हासिल की थी। यह सफलता किसानों द्वारा विभिन्न आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकियों जैसे कि उन्नत किस्म के बीज, मशीनों आदि के अपनाने से ही संभव हो पाई थी। भविष्य में वैज्ञानिक तकनीकियों में निरंतर अपेक्षित बदलावों की आवश्यकता है ताकि बढ़ती जनसंख्या के लिये पर्याप्त खाद्यान्न के उत्पादन के लक्ष्य को समय रहते प्राप्त किया जा सके।

ड्रोन एक ऐसा मानव रहित विमान है, जिसे दूर से ही नियंत्रित तरीके से उड़ाया जा सकता है। इसके खेती में प्रयोग की अपार संभावनाएं हैं। ड्रोन का उपयोग खेती में निम्नलिखित रूपों में हो सकता है:

मृदा विश्लेषण

फसल चक्र के शुरूआती दौर से ही ड्रोन फसल उत्पादन प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। खेत की मृदा का त्रिआयामी (थ्री. डी.) मानचित्र भी ड्रोन की सहायता से बनाया जा सकता है। खेत के विभिन्न खंडों में मृदा के तत्वों के स्तर की जानकारी को वैश्विक स्थान निर्धारण प्रणाली बिन्दु (जी.पी.एस. पॉइंट) के साथ मिलाकर यदि त्रिआयामी मानचित्र की रूपरेखा तैयार की जाये तो तत्वों की विभिन्नता के आधार पर उर्वरक का छिड़काव किया जा सकता है। इसके साथ-साथ यदि मृदा की नमी का स्तर भी इसी त्रिआयामी मानचित्र में विलय कर दिया जाये तो भविष्य में पड़ने वाली सिंचाई की आवश्यकता की गणना करके बताया जा सकता है। इस तरह उचित प्रबंध करके कृषि उत्पादन लागत को कम किया जा सकेगा। इस तरह का प्रयोग अफ्रीका महाद्वीप में फसल की पैदावार में सुधार करने वाले डिजिटल मानचित्रों को तैयार करने में हो रहा है।

फसल स्वास्थ्य मूल्यांकन

बुआई के बाद, पौधा वृद्धि के क्रमवार चरणों जैसे अंकुरण, पत्तों व टहनियों के विकास, फूलों के विकास से होकर गुजरता हुआ परिपक्वता के चरण तक पहुंचता है। इन विभिन्न चरणों में पौधे के विकास की जांच किसानों को निश्चित अंतराल में करते रहना पड़ता है। यदि खेत का क्षेत्रफल बड़ा हो तो यह किसानों के लिये मेहनत और थकान भरा कार्य होता है। इस स्थिति में ड्रोन द्वारा छायाचित्रों के माध्यम से फसलों का निश्चित समय अंतराल में निरीक्षण किया जा सकता है। पौधे में अपेक्षित परिवर्तन के विपरीत कोई लक्षण नजर आता है तो उसे पहचान कर दूर करने के संभावित उपायों का प्रयोग समय रहते किया जा सकता है।

मवेशियों व जंगली जानवरों से फसल का बचाव

किसानों को अन्न उत्पादन में हर कदम पर परेशानियों का सामना करना पड़ता है। मवेशी व जंगली जानवर जैसे हाथी, नीलगाय आदि फसलों की बर्बादी करते

हैं। इससे किसानों को रात-रात भर जागकर खेतों की रखवाली करनी पड़ती है। इन जंगली जानवरों की निगरानी ड्रोन में थर्मल कैमरों को लगाकर की जा सकती है। इससे पशुओं के आने-जाने के रास्ते आदि पर नजर रखी जा सकती है। समय रहते किसानों को आगाह किया जा सकता है। अफ्रीकी देशों जैसे युगांडा, तंजानिया और केन्या में ड्रोन का उपयोग किसान के मवेशियों को जंगली खतरनाक जानवरों से सुरक्षित रखने के लिए किया जा रहा है।

परागकों का छिड़काव

जलवायु परिवर्तन, अत्यधिक मात्रा में कीटनाशकों का प्रयोग, रोगजनक परजीवियों का संक्रमण, सिकुड़ते खेत, घटते जंगल और घटती जैव विविधता के कारण, मधुमक्खियों आदि परागणकर्ताओं के जीवन के लिए खतरे

ड्रोन से बढ़ती रोजगार की संभावनाएं

नागर विमानन महानिदेशालय के अनुसार ड्रोन को टेक-ऑफ वेट के अनुसार पांच भागों में वर्गीकृत किया गया है:

- **नैनो:** 250 ग्राम से कम या बराबर
- **सूक्ष्म:** 250 ग्राम से बड़ा और 2 कि.ग्रा. से कम या बराबर
- **मिनी:** 2 कि.ग्रा. से बड़ा और 25 कि.ग्रा. से कम या बराबर
- **छोटा:** 25 कि.ग्रा. से बड़ा और 150 कि.ग्रा. से कम या बराबर
- **बड़ा:** 150 कि.ग्रा. से बड़ा। व्यावसायिक क्षेत्र में इनको उड़ाने के लिए भारत सरकार द्वारा बनाये गये मापदंडों व नियमों का पालन करना अनिवार्य है।
- ड्रोन रोजगार का एक ऐसा नया क्षेत्र है। इसमें ड्रोन का परिचलन (पायलेटिंग) सीख कर ऐसे युवा जिनकी आयु 18 वर्ष से अधिक है, लगभग 20 से 30 हजार रुपये प्रति माह की कमाई कर सकते हैं। इसके लिए पायलट के पास प्रशिक्षण प्रमाण पत्र होना आवश्यक है। देश भर में कई सरकारी व गैर-सरकारी संस्थानों ने ड्रोन प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारंभ कर दिए हैं। युवाओं में ड्रोन के प्रति नया उत्साह देखने को मिल रहा है।

ड्रोन के माध्यम से बीजों का छिड़काव

लकड़ी की आपूर्ति के लिए जंगलों को बड़ी तेजी से काटा गया है और पारिस्थितिकी असंतुलन पैदा हो गया है। इन कटे हुए व छिन्न-भिन्न जंगलों के पुनरोद्धार के लिए कई तरह के कार्यक्रमों के माध्यम से प्रयास होते रहे हैं। प्रतिवर्ष लाखों पेड़ों का वृक्षारोपण किया जाता है, जिसमें जन व धन दोनों का उपयोग होता है और यह कार्य काफी खर्चीला हो जाता है। जंगल ज्यादातर ढालू और ऊबड़-खाबड़ जगह होते हैं। यहां पर पारंपरिक कृषि मशीनों का पहुंचना मुश्किल होता है। वृक्षारोपण को पूरा करने के लिए वैज्ञानिकों द्वारा बीज पैड का निर्माण किया जा रहा है, जो कि बीजों को अंकुरित करने में मदद करते हैं। ये आवश्यक पोषक तत्वों को भी उपलब्ध कराते हैं। ये बीजपैड कैप्सूल बायोडिग्रेडेबल पदार्थ से बनाये जाते हैं। इस तरह ड्रोन के माध्यम से दुर्गम स्थानों पर भी बीजपैड को गिराकर वृक्षों को उगाया जा सकता है। ड्रोन इस कड़ी में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, हालांकि यह तकनीकी अभी शोध के अंतर्गत है।

कृत्रिम परागण में ड्रोन है उपयोगी

की घंटी है। यदि ऐसा ही रहा तो परागण क्रिया के लिए कृत्रिम माध्यमों का प्रयोग करना जरूरी हो जायेगा। कृत्रिम रूप से परागण के लिए सूक्ष्म आकार के ड्रोन का प्रयोग किया जा सकता है। इस तरह का प्रयोग जापान में वैज्ञानिकों द्वारा फूलों में परागण के लिए किया गया है।

सिंचाई व हाइड्रोजेल का छिड़काव

हाइपरस्पेट्रलया थर्मल सेंसर वाला ड्रोन सूखे खेत के खंडों को पहचानकर उन पर पानी या हाइड्रोजेल का छिड़काव कर सकता है। इससे फसलों को सूखने से बचाया जा सकता है। इस प्रकार खेत की मृदा जलधारण क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

फसल अवशेषों के अपघटन के लिए जैविक रसायनों का छिड़काव

फसलों के अवशेष महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन हैं। ये न केवल आगामी फसल के लिए पोषक तत्वों के स्रोत हैं बल्कि मृदा, पानी और वायु की बेहतर गुणवत्ता बनाये रखने में भी कारगर होते हैं। वर्तमान समय में अवशेषों का निपटारा एक बड़ी समस्या बन गया है। इसके परिणामस्वरूप किसान अवशेषों को जलाने को मजबूर हो जाते हैं। फसल के अवशेषों का बड़े पैमाने पर संग्रह और ढोना खर्चीला व बोझिल है। इसलिए अवशेष प्रबंधन अब भी एक आर्थिक रूप से व्यावहारिक विकल्प नहीं है। फसल अवशेषों के अपघटन को जैवीय तरल पदार्थों के छिड़काव से त्वरित किया जा सकता है। इस छिड़काव के लिए ड्रोन का प्रयोग एक सटीक विकल्प हो सकता है।

तरल व ठोस उर्वरकों का छिड़काव

फसलीय पौधों के पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार के उर्वरकों का छिड़काव मानवीय तरीके से या मशीनों के माध्यम से किया जाता है। पौधे, उर्वरकों को मृदा से जड़ों द्वारा एवं ऊपरी छिड़काव करने पर पत्तियों द्वारा अवशोषित कर लेते हैं। ऐसी फसलें जिनकी अधिक ऊंचाई होती है उनमें हाई क्लीयरेंस वाली मशीनों व ट्रैक्टरों का प्रयोग करना पड़ता है। इस तरह की मशीनों में असंतुलन की समस्या होती है। इसमें

दुर्घटना की प्रबल आशंका बनी रहती है। ड्रोन को किसी भी नियंत्रित ऊंचाई पर उड़ाया जा सकता है। इसलिए फसल की ऊंचाई ड्रोन के लिए कोई समस्या नहीं होती और पौधों को यांत्रिक क्षति (मैकेनिकल डैमेज) से भी बचाया जा सकता है। ड्रोन का प्रयोग तरल और ठोस दोनों उर्वरकों के छिड़काव में किया जा सकता है।

कीटनाशक व खरपतवारनाशक रसायनों का छिड़काव

ड्रोन का प्रयोग खेत में निश्चित मात्रा में कीटनाशकों के छिड़काव के लिये किया जा सकता है। इस प्रकार कीटनाशकों का छिड़काव पारंपरिक मशीनों की तुलना में लगभग पांच गुना तेजी से किया जा सकता है। इससे किसानों को कीटनाशक के संपर्क में आने से रोका जा सकता है। चीन ने ड्रोन का प्रयोग कीटनाशकों के छिड़काव के लिए आरंभ कर दिया है। हमारे देश में भी ड्रोन द्वारा कीटनाशकों के छिड़काव पर अनुसंधान बड़े व्यापक रूप में हो रहा है। भाकृअनुप द्वारा वित्तपोषित परियोजना में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के कृषि अभियांत्रिकी संभाग में इस तरह का अनुसंधान चल रहा है। विकसित कीटनाशक छिड़कावक ड्रोन चार कि.ग्रा. का वजन उठाने की क्षमता रखता है। इसकी उड़ान क्षमता 10 मिनट की है। यह एक उड़ान में लगभग 0.07 हैक्टर के क्षेत्र में छिड़काव कर सकता है।

खेतों की भौगोलिक स्थिति का आकलन

ड्रोन के प्रयोग से खेतों की ऊंचाई और तल में विविधता का बड़ी आसानी से पता लगाया जा सकता है। असमता के स्वरूप को जानकर खेत के ढाल का रेखाचित्र तैयार किया जा सकता है। इसके अनुसार खेत में पानी के नालों को बनाया जा सकता है। इसके साथ ही अधिक अथवा असमतल ढाल होने पर उसको दूर करने के लिए लेजर लैंड लेवलर को कितना कार्य करना पड़ेगा, इसकी भी गणना की जा सकती है और किसान इस कार्य में होने वाले खर्चे को जान सकते हैं। ड्रोन द्वारा पूर्व सर्वेक्षण से खेत के क्षेत्रफल व स्वरूप को जानकर भविष्य में प्रयोग होने वाली कृषि यंत्रों व मशीनों के चलने का बिन्दुपथ आधारित मानचित्र तैयार किया जा सकता है। कम समय व कम लागत में मशीन का प्रयोग हो सकता है। इस तरह से ईंधन व समय दोनों की बचत की जा सकती है। फ्रांस और इटली जैसे देशों ने ड्रोन का प्रयोग खेतों के आकार व क्षेत्रफल की गणना के लिए किया है और जल्द ही भारत देश में भी होने लगेगा।

ड्रोन कृषि प्रबंधन के संचालन के लिए पारंपरिक हवाई वाहनों की अपेक्षा, उच्च परिशुद्धता और कम ऊंचाई की उड़ान भरकर छोटे आकार के खेतों में कार्य करने की क्षमता रखता है। ड्रोन, खेतों के हालात जानने के लिए डाटा एकत्रण और उनका विश्लेषण करने व ऐसे कार्यों में विभिन्न अवयवों व घटकों के उचित और सटीक रूप से प्रबंधन में सहायक सिद्ध हो सकता है। ऐसी परिस्थितियां जहां परंपरागत मशीनों का उपयोग करना चुनौतीपूर्ण है, उदाहरण के लिए गीले धान का खेत, गन्ना, मक्का व कपास की फसल, नारियल और चाय बागान, बागवानी इत्यादि में ड्रोन की उपयोगिता बहुत महत्वपूर्ण व उपयोगी है। टेक्नोलॉजी के विकास के साथ-साथ, ड्रोन के कल-पुर्जे सस्ते और दक्षपूर्ण होंगे। इनसे लंबे अंतराल के लिए हवा में सस्ती उड़ान भरी जा सकेगी। इनका उपयोग कृषि प्रबंधन में आर्थिक रूप से भी फायदेमंद होगा। कृषि कार्यों में मशक्कत और इसे कम आमदनी का जरिया मानकर युवा पीढ़ी का खेती से मोह भंग हो रहा है। ये अच्छी सुख-सुविधाओं और ऊंची पगार की नौकरियों के लिए शहरों की ओर विस्थापित हो रहे हैं। ड्रोन नई तकनीकी से परिपूर्ण होने के कारण युवा पीढ़ी को अवश्य ही आकर्षित करेगा और खेती की तरफ कदम बढ़ाने के लिये प्रोत्साहित करेगा। इसकी भविष्य में अति आवश्यकता है। इस तरह बहुआयामी क्षमताओं से परिपूर्ण ड्रोन कृषि उत्पादन में प्रबंधन के लिए बहुपयोगी और लाभप्रद साबित होगा। ड्रोन पर भारत के साथ-साथ कई अन्य देशों में गहन अनुसंधान लगातार जारी है। इसको कृषि के विभिन्न कार्यों में दक्षता व सरलता से प्रयोग में लाया जा सकेगा। वह दिन दूर नहीं जब ड्रोन का रिमोट किसान के हाथ में होगा और मोबाइल की तरह इसे अपने जीवन में तेजी से अपनाकर इससे भरपूर फायदे के लिए खेतों पर चलाते हुए नजर आयेंगे।

फसल में रोगों व कीटों के स्तर की जांच व उपचार

मृदा व वायुमंडल में विभिन्न प्रकार के हानिकारक बैक्टीरिया, कवक और कीट फसल चक्र के दौरान पैदा हो जाते हैं। इनसे फसलों में संक्रमण होने की आशंका होती है। इसे यदि समय रहते नियंत्रित नहीं किया जाये तो फसलों को अत्यधिक नुकसान उठाना पड़ता है। संक्रमण के दौरान पौधे के पत्तों, फूलों, फलों व टहनियों का रंग, आकार व बनावट में परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन को ड्रोन में लगे हुए मल्टी स्पेक्ट्रम कैमरों के माध्यम से तस्वीरों और वीडियो के रूप में देखा जा सकता है। इनका अध्ययन करके फसलों में होने वाले संक्रमणों का सटीकता से पता लगाया जा सकता है। इस तरह से फसलों में होने वाले नुकसान का संख्यात्मक पूर्वानुमान भी लगाया जा सकता है। बागवानी का भी कृषि आय में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। खेतों की अपेक्षा बागानों में वृक्षों के ऊंचे होने के कारण निरीक्षण व रखरखाव में मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। ड्रोन का प्रयोग करके यह कार्य बड़ी आसानी से किया जा सकता है। इसके माध्यम से फूलों व फलों का निरीक्षण करके उनमें होने वाले कीटों व रोगों को कीटनाशकों के छिड़काव से समय रहते बचाया जा सकता है और उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

अरहर उत्पादन में खरपतवार मल्चिंग से वृद्धि

आर.के. सिंह*
कृषि विज्ञान केन्द्र, पन्ना, जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)

" वर्षा आधारित क्षेत्र में अरहर की कम अवधि की नवीन प्रजाति आई.सी.पी.एल.-88039 के साथ-साथ संतुलित उर्वरक एवं खरपतवार की मल्चिंग फसलों की बुआई के 40-45 दिनों पश्चात करने से अरहर की उत्पादकता में 109 प्रतिशत तक वृद्धि आंकलित की गई। इस क्रम में लागत : लाभ अनुपात 1:2.6 पाया गया। खरपतवार की मल्चिंग से पौधों में पुष्पन एवं फल की स्थिरता में वृद्धि आंकी गई। इससे मृदा के तापमान का नियंत्रण होता है जिससे जैविक क्रिया सुचारू रूप से चलती है। इस कारण समान मात्रा में नमी एवं पोषक तत्व की उपलब्धता बनी रहती है और उत्पादकता में वृद्धि होती है। "

भारत में अरहर की कुल खेती 4.2 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल पर होती है। इसका 80-90 प्रतिशत क्षेत्रफल वर्षा आधारित एवं अनुपयोगी मृदा (असमतल मृदा, खरपतवार ग्रसित एवं मृदा कटाव क्षेत्र इत्यादि) से संबधित है। इसके कारण वर्तमान समय में अरहर फसल की उत्पादकता 780 कि.ग्रा./हैक्टर के स्तर पर स्थिर हो गई है। अरहर की वास्तविक उपज क्षमता कम अवधि की प्रजाति में 1500-1800 कि.ग्रा./हैक्टर व मध्यम से अधिक अवधि की प्रजाति के लिए 2500-3000 कि.ग्रा./हैक्टर है। इस फसल की वास्तविक उपज क्षमता प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर लगातार प्रयास किए जा रहे हैं, फिर भी उत्पादकता में अपेक्षित वृद्धि नहीं हो पा रही है।

अरहर की उत्पादकता के अंतर को प्रजाति की वास्तविक उपज क्षमता से कम करने के लिए एक प्रयास किया

*विषयवस्तु विशेषज्ञ

गया था। इसका वर्णन इस आलेख में किया जा रहा है। उदाहरण के लिए कम अवधि की प्रजाति (आई.सी.पी.एल. -88039) के साथ संतुलित खाद एवं उर्वरक (20:60:20 नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, एवं पोटाश कि.ग्रा./हैक्टर) के प्रयोग के साथ-साथ खरपतवार की खड़ी फसल में मल्चिंग करके अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

अरहर की खड़ी फसल की पंक्ति में उगे खरपतवारों को उखाड़कर यथास्थान पर फैला (मल्चिंग) दिया जाए तो फसल के उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ मृदा एवं उपज गुणवत्ता में भी सुधार लाया जा सकता है। अरहर की खेती अधिकतर वर्षा एवं अनुपयोगी असमतल भूमि पर की जाती है। उन क्षेत्रों के लिए यह तकनीकी वरदान साबित होगी, जहां अधिक वर्षा एवं असमतल मृदा होने पर खरपतवार की मल्चिंग वर्षा की तीव्रता में कमी कर मृदा कटाव को कम करती है। यह कम वर्षा वाले क्षेत्रों में वर्षा के पानी को अधिक समय तक यथास्थान पर रोककर अंत:स्पन्दन क्रिया को तेज कर देती है। मल्चिंग से अधिक से अधिक वर्षा जल अरहर के जड़ क्षेत्र में जाकर मृदा को समान मात्रा में संपृत्त कर देता है। यह धूप निकलने पर सूर्य के प्रकाश की किरणों को मृदाकणों तक पहुंचने में अवरोध उत्पन्न करता है। इससे मृदा में संरक्षित नमी का वाष्पन नहीं हो पाता। वर्षा समाप्ति के पश्चात भी फसल आवश्यकतानुसार अधिक दिनों तक नमी की उपलब्धता मृदा में बनी रहती है। इसका सफल उपयोग करने से वर्षा आधारित फसल क्षेत्रों में अरहर फसल की उत्पादन वृद्धि में सहायक सिद्ध होती है।

खरपतवार मल्चिंग

अरहर की फसल में खरपतवार प्रबंधन की क्रांतिक अवस्था में उन्हें उखाड़कर यथास्थान पर फसल की पंक्ति में फैला दें। क्रांतिक अवस्था तक खरपतवार फसल के साथ-साथ वृद्धि करते हैं व हरे-भरे रहते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि उक्त खरपतवार में पोषक तत्वों के साथ-साथ कार्बन की मात्रा भी पर्याप्त है, जो अपघटन पश्चात मृदा में मिलकर लाभकारी सिद्ध होती है। खरपतवार की मल्चिंग करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उखड़े खरपतवार की जड़ें पंक्ति में फैलाते समय मृदा के संपर्क में न आने पाएं। खरीफ मौसम में पर्याप्त नमी होने के कारण खरपतवार पुनर्जीवित हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में खरपतवार को उखाड़कर इनकी जड़ें काट दें या जड़ को मृदा की विपरीत दिशा में ऊपर की ओर मोड़कर फैलाएं। इससें खरपतवार की जड़ें मृदा के संपर्क में नहीं आ पाती और उनका पुनर्जन्म नहीं होता है। वर्षा, पानी व धूप के बार-बार संपर्क में आने से उनका विघटन भी आसानी से हो जाता है। मृदा पर आच्छादन के कारण सूर्य प्रकाश पुन: जमीन पर नहीं पहुंच पाता। इससे मृदा में पड़े अन्य खरपतवार के बीज अंकुरित नहीं हो पाते।

खरपतवार मल्चिंग का मृदा पर प्रभाव

खरपतवार, फसल के समान पानी एवं पोषक तत्वों का शोषण कर प्रारंभिक अवस्था में अच्छी वृद्धि करते हैं। इसे उखाड़कर यथास्थान पर फैलाकर मल्चिंग की जाती है। खरपतवार की मल्चिंग हरी अवस्था में की जाती है, जिसमें पर्याप्त मात्रा में पानी व कार्बन होता है। इसके कारण उक्त मल्चिंग वाले खरपतवार आसानी से विघटित हो कर मृदा में कार्बन की मात्रा में वृद्धि करते हैं। साथ ही साथ खरपतवार विघटन के दौरान स्रावित ह्यूमिक एवं फ्लेविक अम्ल से मृदा के कण आपस में चिपकते हैं। इससे मृदा सरंचनाओं में सुधार होता है। आच्छादित खरपतवार वर्षा की तीव्रता में अवरोध पैदा करता है, जिससे मृदा कटाव नहीं होता है। सूर्य की किरणों को अवशोषित करके मृदा के तापमान में वृद्धि कर देता है और जैविक क्रिया तेज हो जाती है। इसके कारण मृदा में नमी एवं पोषक तत्व की उपलब्धता बढ़ जाती है। खरपतवार की हरी अवस्था में मल्चिंग से सूर्य के लाल किरणों का अवशोषण मृदा में नहीं हो पाता है। इससे लाल किरणों का अनुपात मृदा के संपर्क में कम हो जाता है। इसकी अनुपस्थिति में मृदा में पड़े अन्य खरपतवार के बीज नहीं उग पाते। खरपतवार के बीज के अंकुरण में लाल किरणों का पर्याप्त मात्रा में होना अनिवार्य है,

जबकि हरी अवस्था में मल्चिंग करने से दलहनी खरपतवार का विच्छेदन आसानी से हो जाता है और तब फाइट्रोटॉक्सिन एवं पैथोजन्स का स्राव होता है। इससे उगते खरपतवार के साथ-साथ अन्य संक्रमित करने वाले पैथोजन्स भी मर जाते हैं। खरपतवार मल्चिंग से कम वर्षा वाले क्षेत्रों में वर्षा जल का अत्याधिक अंत:स्पन्दन अधिक दिनों तक फसल जड़ क्षेत्र में नमी संरक्षित रखता है। इसका उपयोग फसल अपने जीवन चक्र को पूरा करने में करती है। इसके कारण मल्चिंग वाले क्षेत्रों से अधिक से अधिक उत्पादन पाया जा सकता है। साथ ही साथ यदि खरपतवार की मल्चिंग अरहर फसल की कम अवधि वाली प्रजाति में की जाती है तो नवंबर तक इनकी कटाई कर रबी में कम अवधि की फसलों जैसे सरसों की किस्म पूसा-अग्रणी, वर्षा आधारित गेहूं की किस्म जे.डब्ल्यू.-17, जे.डब्ल्यू.-3020, जे.डब्ल्यू.-3211 आदि को लगाया जा सकता है।

खरपतवार मल्चिंग की क्रांतिक अवस्था

यह सर्वविदित है कि एक बुआई के 40-45 दिनों पश्चात पानी, खाद, स्थान एवं प्रकाश के लिए अरहर की फसल खरपतवार से प्रतिस्पर्धा करती है। इसका नियंत्रण उक्त अवधि में अति आवश्यक है। यह अवधि अरहर फसल के लिए खरपतवार प्रबंधन एवं मल्चिंग की क्रांतिक अवस्था है। इस अवस्था पर खरपतवार

मल्चिंग का वानस्पतिक वृद्धि पर प्रभाव

सारणी 1. अरहर के प्रमुख खरपतवार

क्र.सं.	वैज्ञानिक नाम	सामान्य अंग्रेजी नाम	सामान्य हिन्दी नाम
	घास कुल के खरपतवार		
01	इकाइनोक्लोवा क्लोना	जंगली धान	सावां
02	इकाइनोक्लोवा क्रुसगली	बानयार्ड घास	ब्रानसावक
03	साइनोडान डक्टीलान	बरमुडा घास	दूबघास
	सेज कुल के खरपतवार		
04	साइप्रस रोटेन्डस	पर्पल नटसेज	मोथा
05	साइप्रस इरिया	येलो नटसेज	मोरफनाटा
	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार		
06	कोमील्यूना वंग्गालेन्सिस	डे फ्लावर	क्नकवा
07	कोमील्यूना कोम्यूनिश	डे फ्लावर	वोखना
08	यूफोर्बिया हिर्टा	गार्डेन स्पर्ग	छोटी दूधी
09	यूफोर्बिया जेनीक्यूलेटा	पाडरश	जंगली जूट
10	पारथेनियम हिस्ट्रोफोरस	कैरेट घास	गाजर घास
11	एवोलमशकश माश्चैट्रस	वाइल्ड ओकरा	गाजर घास जंगली भिंडी

सारणी 2. अरहर पर खरपतवार मल्चिंग का प्रभाव

क्र.सं.	उपचार	फल सहित पौधा	उपज क्विंटल/ हैक्टर	लागत	कुल लाभ	लागत लाभ अनुपात
01	संतुलित उर्वरक+पेंडीमेथलीन	73	10.3	14,000	27,810	1:2.0
02	संतुलित उर्वरक+ खरपतवार मल्चिंग	105.3	15.9	16,500	42,930	1:2.6
03	संतुलित उर्वरक+हाथ द्वारा खरपतवार नियंत्रण	88	13.4	15,500	36,180	1:2.3
04	संतुलित उर्वरक+ बना निदा प्रबंधन	58	7.6	12,500	20,520	1:1.6

नियंत्रण न करने पर अरहर फसल की उत्पादकता 30-40 प्रतिशत तक प्रभावित होती है। खरपतवार की क्रांतिक अवस्था पर उखाड़कर यथास्थान पर अरहर फसल को पंक्ति में फैला दें (मल्चिंग)। क्रांतिक अवस्था से पहले खरपतवार उखाड़ने पर कम वृद्धि के कारण मल्चिंग नहीं हो पाएगी और कुछ खरपतवार पुन: उग आने की आशंका बनी रहेगी। क्रांतिक अवस्था के पश्चात खरपतवार उखाड़ने पर उसमें तने व पत्ती के कठोर हो जाने के साथ-साथ बीज का निर्माण हो जाता है। इसका विघटन आसानी से नहीं होगा। वह पहले से ही फसल से प्रतिस्पर्धा कर हानि कर चुका होगा, जो हर स्थिति में हानिकारक है।

खरपतवार मल्चिंग का प्रभाव

उपरोक्त वर्णित खरपतवारों की सूची के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ये अधिकतर खरपतवार उस प्रजाति के हैं, जिनकी क्रांतिक अवस्था तक अच्छी वृद्धि हो जाती है।

मल्चिंग का फलन पर प्रभाव

अरहर फसल में संतुलित उर्वरक के साथ-साथ खरपतवार की मल्चिंग करने पर 39.6 प्रतिशत फलत अधिक पाई गई और उत्पादन में 109 प्रतिशत वृद्धि पाई गई। आर्थिक विश्लेषण में लागत लाभ-अनुपात 1:2.6 पाया गया जहां पर खरपतवार की मल्चिंग की गई। यह उत्पादन 62.5 प्रतिशत बिना खरपतवार की मल्चिंग वाले क्षेत्र से अधिक है। अत: कृषक बंधुओं को इस प्रकार के आधुनिक उपायों को अपनाना चाहिए। इससे अरहर उत्पादन में वृद्धि होगी और वर्षा आधारित क्षेत्र में अधिक से अधिक वर्षा जल का नमी व मृदा हेतु संरक्षण होगा।

भेड़ उत्पादन प्रणाली से भरपूर लाभ

प्रभात कुमार पंकज[1], **डी.बी.वी. रमन**[2], **जी. निर्मला**[3], **के. सम्मी रेड्डी**[4], **पी. श्रीनिवास**[5] और **संतराम यादव**[6]
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059 (तेलंगाना)

"छोटे भेड़पालकों को पशुधन उत्पादन का कम मूल्य मिल पाता है। इसके मुख्य कारणों में जागरूकता में कमी, सौदेबाजी की कम शक्ति, बिक्री के लिए छोटे अधिशेष, बुनियादी सुविधाओं की कमी, बिचौलियों की विपणन में मुख्य भूमिका आदि को गिनाया जा सकता है। इसलिए समय की यह मांग है कि हम उन्हें प्रेरित कर एक समुदाय के रूप में एकजुट होने का अवसर प्रदान करें। इनमें ब्रीडर्स एसोसिएशन और किसान समूह विशेष भूमिका अदा कर सकते हैं। इनके माध्यम से भेड़पालकों को अपने उत्पादों का उचित लाभकारी मूल्य मिलने की अधिक संभावना बनी रहती है। इस प्रकार उचित प्रबंधन के तरीकों के माध्यम से भेड़पालकों को समृद्धि की ओर अग्रसर किया जा सकता है।"

वर्षा आधारित क्षेत्रों में किसानों की आय का मुख्य स्रोत माध्यमिक कृषि है। इसमें पशुधन उनकी आय में प्रमुख योगदान देता है। इन क्षेत्रों में अजैविक तनाव से जलवायु परिवर्तनशीलता के कारण ज्यादातर पशु, विशेषकर जुगाली करने वाले छोटे पशु, सर्वाधिक प्रभावित होते हैं। पशुपालन की बेहतर प्रबंधन पद्धतियों को अपनाकर देखभाल करने से इनकी उत्पादकता काफी हद तक बढ़ाई जा सकती है। छोटे जुगाली करने वाले पशुओं में पर्यावरण तनाव के प्रभावों में सुधार के लिए बहुअनुशासनिक दृष्टिकोण को अपनाने की आवश्यकता है। इसमें आनुवंशिक हस्तक्षेप, पोषण संशोधन, आश्रय और प्रबंधन के विकल्प तथा बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं प्रमुख हैं।

समय की मांग है कि इन ग्रामीणों को समुदाय के रूप में एकजुट होकर कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाए। इसे ब्रीडर्स किसान एसोसिएशन समूह का नाम दिया जा सकता है। इससे किसानों को अपने उत्पादों का उचित लाभकारी मूल्य मिलना आसान हो जाता है। इस क्रम में धीरे-धीरे देसी प्रबंधन प्रथाओं को आधुनिकता से जोड़ना चाहिए। इसमें क्षेत्र की विशिष्ट प्रौद्योगिकियों, उत्पादकता और भेड़ उत्पादन प्रणाली को शामिल करते हुए इनकी लाभप्रदता को शामिल करके सुधार किया जा सकता है। सूखे के प्रभाव को कम करने के लिए कुछ अच्छे प्रबंधन के तरीकों को अपनाकर भी सुधार लाया जा सकता है। इस क्रम में प्रजनन क्षमता के नुकसान से उबरने के लिए खनिज मिश्रण/खनिज ब्लॉकों का इस्तेमाल

---

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2]प्रधान वैज्ञानिक (पशुधन उत्पादन और प्रबंधन); [3]अध्यक्ष एवं प्रधान वैज्ञानिक (कृषि विस्तार); [4]निदेशक; [5]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता; [6]सहायक निदेशक (राभा)

स्वास्थ्य प्रबंधन

तापमान और आर्द्रता में परिवर्तन के कारण पशुओं में कीड़ों का संक्रमण होता है। वर्षा के पैटर्न में परिवर्तन भी इसे प्रभावित कर सकते हैं। इसके अलावा प्रवास के दौरान चराई संसाधनों की खोज में वहां अलग-अलग झुंड से पशुओं के मिश्रण के माध्यम से रोग ग्रहण करने का जोखिम बढ़ जाता है। अत: नियमित स्वच्छता द्वारा स्थानिक रोगों और निवारक टीकाकरण द्वारा भेड़ उत्पादन प्रणाली की स्थिरता और कृषकों में समृद्धि लाई जा सकती है।

किया जाना चाहिए। इस क्रम में अनाज/खली का पूरक आहार के रूप में प्रयोग मौजूदा फीड संसाधनों का कुशल उपयोग, पशु को सीधे धूप में नहीं छोड़ना, शेड में हवा का भरपूर आवागमन और शेड में पशुओं का भीड़भाड़ से बचाव तथा गर्मी के तनाव से बचने के लिए सुबह जल्दी या देर शाम के दौरान पशुओं की चराई आदि शामिल हैं।

दीर्घावधि रणनीति के रूप में सूखा प्रवण क्षेत्रों में अतिरिक्त संसाधनों के सृजन, उत्पादक पशुओं के लिए चारा और चारे के वितरण की आवश्यकता है। प्रभावी तंत्र के साथ-साथ चारा और चारा बैंकों की स्थापना और सूखे की अवधि के दौरान परिवहन, भंडारण और सूखे चारे को घना करना आदि भी शामिल हैं।

भेड़ के लिए चारे की उपलब्धता बढ़ाने के लिए टैंक बेड पर *स्टाइलोसनथस हामटा और सिंक्रस सलिारिस, हार्टिपास्टरल* और *सिल्विपास्टरल* के रूप में और बगीचे में पेड़ पंक्तियों या बागानों के बीच में उपलब्ध रिक्त स्थान में बोया जा सकता है। चारा उत्पादन बढ़ाने के लिए फसलों की खेती के बीच-बीच में मक्का की तरह कम अवधि वाले चारे की बुआई की जा सकती है। अधिक उपज देने वाली बारहमासी संकर नेपियर सीओ-3 एवं सीओ-4 की तरह बहुकटाई वाली चारा किस्मों को कुशलता से अधिकाधिक चारा प्राप्त करने के लिए सीमित भूमि संसाधनों में इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके साथ ही साथ खेत में उपलब्ध कृषि योग्य भूमि में उगाने के लिए प्रति इकाई क्षेत्र चारा फसलों का यह एक विकल्प भी हो सकता है।

भाकृअनुप-क्रीडा के एक अनुसंधान कार्यक्रम में यह पाया गया कि भेड़ का जब वन एवं चारागाह प्रणाली के साथ एकीकृत पालन किया जाता है तो ईंधन की लकड़ी और मृदा की उर्वरता में सुधार आता है। इस क्रम में एक हैक्टर बंजर भूमि में 25 से 30 हजार रुपये तक का शुद्ध लाभ मिल सकता है। इसके साथ ही जब बागवानी एवं चारागाह प्रणाली के साथ भेड़ का एकीकृत पालन किया जाता है तो एक हैक्टर भूमि से चार से पांच हजार रुपये तक की अतिरिक्त आय

स्थानीय संसाधनों से तैयार पशु आवास

सारणी 1. वर्ष 2025 तक हरे और सूखे चारे की मांग व आपूर्ति का अनुमान (मिलियन टन में)

वर्ष	मांग		आपूर्ति		मांग में कमी प्रतिशत	
	हरा चारा	सूखा चारा	हरा चारा	सूखा चारा	हरा चारा	सूखा चारा
1995	379	421	947	526	60	20
2000	384	429	988	549	61	22
2005	390	444	1025	569	62	22
2010	395	451	1061	590	63	23
2015	401	466	1098	610	64	24
2020	406	474	1134	630	64	25
2025	411	488	1171	650	65	25

स्रोत: भाकृअनुप-एन.ए.आई.एन.पी., बेंगलुरू मोनोग्राफ (2007)

उपाय

आनुवंशिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर पर्यावरण तनाव को कम करने के लिए इन उपायों को शामिल करने का सुझाव दिया जाता है:

- स्थानीय आनुवंशिक समूह जो जलवायु तनाव के प्रति सुग्राही हैं, उनकी पहचान करना और उनको मजबूत बनाना।
- आनुवंशिक रूप से गर्मी सहने की क्षमता वाले पशुओं का चयन या गर्मी और रोग सहिष्णु नस्लों के साथ स्थानीय आनुवंशिक पशुओं का संकरण, ताकि ज्यादा से ज्यादा पशुओं को निरोधक वर्ग में लाया जा सके।
- रोग सहिष्णुता, गर्मी सहने और विपरीत परिस्थितियों में जीवित रहने की क्षमता की तरह अन्य अद्वितीय विशेषताओं के लिए जिम्मेदार जीन की पहचान करना। भविष्य के प्रजनन स्टॉक के चयन के लिए आधार के रूप में इसका प्रयोग करना ताकि जलवायु तनाव के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने में मदद मिल सके।
- प्रजनन प्रबंधन रणनीति के अंतर्गत प्रत्येक 2-3 साल पर प्रजनन पशु (अन्य जिला झुंड से विनिमय) को बदलना चाहिए। सिद्ध नस्ल के वीर्य के साथ कृत्रिम गर्भाधान करने से उत्पादकता बढ़ाने में मदद मिलेगी। इस पद्धति को ब्लॉक स्तर पर नाभिक झुंड के गठन के माध्यम से बेहतर नर पशुओं की आपूर्ति के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।
- चारा और चारा संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर प्रजनन काल के तुल्यकालन द्वारा स्वस्थ शिशु उत्पादन और वजन बढ़ाने में सहायता हो सकती है। अतिसंवेदनशील संकर नस्लों की तुलना में मध्यम उत्पादकता वाली स्थानीय जलवायु की लचीली नस्लों को प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि वे जलवायु निरोधक बनी रह सकें।

पोषण प्रबंधन

- पशु सुबह के समय ठंडे मौसम के दौरान अधिक चारा खाते हैं। चारा सेवन से पशु में गर्मी का सृजन होने लगता है। यह चार से छः घंटे बाद चरमोत्कर्ष पर आ जाता है। इस समय वातावरण का तापमान भी उच्चतम रहता है। भेड़ों को चारा दिन के बाद के हिस्से के दौरान या शाम के बाद देना चाहिए ताकि पशु के शरीर में ताप उत्पादन से बेचैनी महसूस न हो।
- गर्मी का तनाव झेल रहे पशुओं को उच्च रेशेदार आहार देने से बचना चाहिए। पशुओं में रेशेदार आहार की जगह उच्च ऊर्जा घनत्व वाले भोज्य पदार्थ जैसे कि दानायुक्त आहार देने से ऊर्जा घनत्व बढ़ता है और पशुओं की उत्पादकता गर्मियों के मौसम में भी बनी रहती है।
- सभी श्रेणियों के पशुओं के लिए स्थानीय स्तर पर उपलब्ध चारे के साथ तैयार किए गए दाना मिश्रण (18 प्रतिशत डीसीपी, 70 प्रतिशत टीडीएन) को पशु के शरीर के वजन के एक प्रतिशत की दर से देना चाहिए।
- पशुओं को देने के लिए एक उच्च पाचन शक्ति वाली भोज्य सामग्री का चयन करना चाहिए। इससे उनके अंदर पैदा होने वाली गर्मी को कम किया जा सकता है। पशुओं को जरूरी पोषक तत्व भी मिल पाता है।
- छायादार जगह पर, सुबह जल्दी या शाम में, तांबा, सेलेनियम, जिंक और फॉस्फोरस की आहार में पूरकता खनिज ईंटों के माध्यम से करने से गर्मी से उत्पन्न होने वाले तनाव को कम करने में सहायता मिलती है (रमण, 2014)।
- राशन में सोडियम बाइकार्बोनेट और मैग्नीशियम ऑक्साइड का बफर मिश्रण भी मिलाना चाहिए। यह पशु के तापमान को सामान्य बनाए रखने में मदद करता है।
- भेड़ के राशन में पोटेशियम का स्तर बढ़ाना चाहिए। तापीय तनाव में पशुओं से पोटेशियम का उच्च स्राव होता है। दैनिक आहार में मैग्नीशियम का स्तर बढ़ाना फायदेमंद होता है।
- जब कोई हरा चारा उपलब्ध नहीं है तब गर्मी का तनाव कम करने के लिए दाना मिश्रण में विटामिन की पूरकता तापीय तनाव कम करने में सहायक सिद्ध हो सकती है।
- गंभीर गर्मी या अकाल की स्थिति के दौरान, पशुओं को भोज्य संसाधनों की खोज में बहुत दूरी तय करने से ऊर्जा का अपव्यय होता है। चारागाहों में गुणवत्तापूर्ण तत्वों की कमी भी हो जाती है। इस परिस्थिति से निपटने के लिए चारा काटकर पशुओं के सामने गहन प्रणाली के तहत परोसना चाहिए।
- साफ-सफाई का ध्यान रखने और ताजा हरा चारा पशुओं को देने से वे अधिक चारा लेने के लिए प्रोत्साहित होते हैं।
- उच्च पर्यावरण तापमान की अवधि के दौरान पशुओं के लिए पानी की पर्याप्त मात्रा का उपयोग किया जाना चाहिए। पशुओं के लिए निरंतर स्वच्छ, ताजा और ठंडे पानी की आपूर्ति का प्रावधान रहना चाहिए।
- गर्म अवधि के दौरान नियमित अंतराल पर पशुओं पर ठंडे पानी का छिड़काव करना भी गर्मी के तनाव को कम करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

संगठित भेड़ पालन में आश्रय प्रबंधन

भी प्राप्त हो सकती है। तापमान और आर्द्रता में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप पशुओं में कीटों का संक्रमण पाया गया है। इसके अलावा प्रवास के दौरान चराई संसाधनों की खोज में, वहां अलग-अलग झुंड से पशुओं के मिश्रण के माध्यम से रोगों से संपर्क के कारण रोग ग्रहण करने का जोखिम बढ़ जाता है। अतः नियमित स्वच्छता अपनाकर स्थानिक रोगों और मध्यवर्ती पोषिता को नियंत्रित किया जा सकता है। निवारक टीकाकरण के माध्यम से भेड़ उत्पादन प्रणाली की स्थिरता और कृषकों की समृद्धि को स्पष्ट रूप से देखा गया है।

भेड़ उत्पादन पर अजैविक तनाव के प्रभाव

भेड़ों में होने वाले सबसे महत्वपूर्ण अजैविक तनाव का कारण तनावपूर्ण गर्मी के बाद सर्दी का पड़ना है। दक्षिण भारत के अर्द्धशुष्क और शुष्क क्षेत्रों में भेड़ों में सबसे अधिक तापीय तनाव मई से अगस्त में देखने को मिलता है। इस समय शरीर से ताप हानि की दर बहुत अधिक होने लगती है। यह निम्न ताप को जन्म दे सकती है। यह बहुत धीमी है तो अतिताप हो सकता है। उच्च पर्यावरण तापमान के संपर्क में आने पर भेड़ के शारीरिक तापमान और श्वसन दर में वृद्धि होती है। इसके परिणामस्वरूप अनुकूली तंत्र द्वारा शरीर की गर्मी को फैलाने की कोशिश की जाती है। इन परिस्थितियों में पशु पानी ज्यादा पीता है और खाना कम खाता है।

खाने की मात्रा में गिरावट और पोषक तत्वों की कमी के कारण भेड़ में भोज्य रूपांतरण कम हो जाता है। अतिताप गंभीर रूप से नर में उत्पादित शुक्राणु की मात्रा में गिरावट लाता है। यह मादा प्रजनन क्षमता को भी विपरीत रूप से प्रभावित करता है। मौर्य एवं सहयोगी (2004) के अनुसार तापीय तनाव के तहत मादा भेड़ में विभिन्न प्रजनन लक्षण जैसे मादा भेड़ में गर्मी के संकेत, मद, गर्भाधान और मेमने की जन्म दरों की अवधि के साथ ही नवजात भेड़ के बच्चे के जन्म के समय वजन आदि में काफी कमी देखने को मिली थी। नकवी एवं सहयोगी (2004) ने तापीय तनाव के अंतर्गत भारत मेरिनो मादा भेड़ में सुपर डिंबोत्सर्जन प्रतिक्रिया और भ्रूण उत्पादन में उल्लेखनीय

कमी की सूचना दी थी।

अजैविक तनाव के सुधार के लिए रणनीति

छोटे जुगाली करने वाले पशुओं में पर्यावरण तनाव के प्रभावों के सुधार के लिए बहु-अनुशासनिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। इसमें आनुवंशिक हस्तक्षेप, पोषण संशोधन, आश्रय और प्रबंधन के विकल्प और बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं प्रमुख हैं।

सूखे के प्रभाव को कम करने के लिए उचित प्रबंधन प्रणालियां

- प्रजनन क्षमता के नुकसान से उबरने के लिए खनिज मिश्रण या खनिज ब्लॉकों का इस्तेमाल करना
- अनाज/खली का पूरक भोजन के रूप में प्रयोग करना
- मौजूदा फीड संसाधनों के कुशल उपयोग
- पशु को सीधे धूप में नहीं रखना
- शेड में उचित वेंटीलेशन और शेड में पशुओं का भीड़भाड़ से बचाव
- गर्मी के तनाव से बचने के लिए सुबह जल्दी या देर शाम के दौरान पशुओं की चराई

लंबे समय के लिए रणनीति में शामिल

- सूखा प्रवण क्षेत्र में अतिरिक्त संसाधनों का सृजन
- उत्पादक पशुओं के लिए चारा और इसके वितरण के लिए प्रभावी तंत्र के साथ-साथ चारा बैंकों की स्थापना
- सूखे की अवधि के दौरान परिवहन, भंडारण और सूखे चारे को घना करना

चराई प्रबंधन

भेड़ पालन काफी हद तक मौजूदा चराई संसाधनों पर बल देता है। यह मुख्य रूप से चराई और अन्य चारागाहों अर्थात जंगलों, विविध पेड़, फसलों, कृषि योग्य बंजर भूमि और परती भूमि से चराई संसाधनों की उपलब्धता पर निर्भर है। भारत की बंजर भूमि (एटलस, 2000) के अनुसार, देश के भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 40 प्रतिशत क्षेत्र चराई के लिए उपलब्ध है। इसका क्षेत्रफल पर दबाव, चराई पशु इकाइयों के आधार पर एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र के बीच बदलता रहता है (अग्रवाल

पशु आवास

- पशुओं के आराम के लिए पर्यावरण को संशोधित करना चाहिए। विभिन्न अजैव तनाव, जैसे उच्च और निम्न तापमान परिवेश, पर्यावरण आर्द्रता, सौर विकिरण, हवा और बारिश से पशु की रक्षा करनी चाहिए।
- पशु आवास, जलवायु की चरम सीमाओं में भी पशु अवरोधी तनाव विकास का निर्माण करने में सक्षम होना चाहिए। जिससे स्वास्थ्य और प्रजनन के मामले में इष्टतम प्रदर्शन की प्राप्ति हो सके।
- छाया से 40 प्रतिशत तक सौर विकिरण ऊर्जा/गर्मी में कटौती कर सकते हैं। छतों के ऊपर भूसे का प्रयोग अच्छा परिणाम देता है। खासकर यह एक उच्च इंसुलेशन और परावर्तक सतह होने के कारण अपना प्रभाव दिखाता है। बाड़े से कुछ दूरी पर पेड़ का प्रावधान पशुओं को छाया प्रदान करेगा। गर्म जलवायु परिस्थितियों के दौरान पशुओं का स्थानांतरण छायादार और शीतल जगहों पर करना चाहिए।
- आसपास के क्षेत्रों में वनस्पति कवर का प्रावधान जमीन से विकिरण गर्मी कम करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।
- उमस भरे मौसम में साधारण फूस भी छाया और अत्यधिक बारिश से सुरक्षा प्रदान करेगा। फूस की छत के घर न्यूनतम कीमत पर पशु आवश्यकताओं को पूरा करते हुए बेहतर सूक्ष्म जलवायु प्रदान करते हैं।
- इस्तेमाल की जाने वाली छत सामग्री गर्मी से बचाने वाली होनी चाहिए। अर्थात, यह शेड में प्रवेश करने वाली और विकिरण ऊर्जा को रोकने में सक्षम होनी चाहिए। उष्णकटिबंधीय स्थितियों के लिए बांस की चटाई के साथ छप्पर उत्कृष्ट छत सामग्री है। लेकिन इसकी उम्र कम होती है। इसमें सदैव आग का खतरा बना रहता है। छत की बाहरी सतह सफेद रंग में रंगी जानी चाहिए। सफेद सतह इसलिए जिससे वह सौर विकिरण को वापस प्रतिबिंबित कर सके।
- मैदानी क्षेत्रों में शेड के लंबी अक्ष उन्मुखीकरण पूर्व-पश्चिम दिशा में होना चाहिए और उच्च नमी वाले ऊंचाई वाले क्षेत्रों में उत्तर से दक्षिण होना चाहिए।
- पशु आवास हवादार होना चाहिए और इसके अंदर हवा का प्रवाह कम-से-कम 5 कि.मी. प्रति घंटा होना चाहिए। ताकि अमोनिया और नमी बाहर निकल सके तथा पशुओं को सांस की समस्या से बचाए रखा जा सके। यह पशु आवास में हवा परिसंचरण बढ़ रही गर्मी में पशुओं को राहत प्रदान करेगा। आवास के अंदर हवा का परिसंचरण नियमित होना चाहिए। इसमें दीवार में ही आधी खुली आवास व्यवस्था स्थापित करनी होगी। इसे इमारत की ऊंचाई तक बढ़ाकर पंखे का प्रयोग करते हुए बढ़ाया जा सकता है।
- पशु शेड में भीड़भाड़ को कम से कम किया जाना चाहिए। भेड़ सही भंडारण घनत्व में रखी जाने चाहिए।
- भेड़ और बकरी गीली मिट्टी को बर्दाश्त करने में सक्षम नहीं होती हैं। पशु आवास का निर्माण अच्छी तरह से सूखी जमीन पर किया जाना चाहिए।
- शीतोष्ण जलवायु में और ऊंचाई पर एक और पर्याप्त संरचना की जरूरत हो सकती है। उत्तर दिशा में उन्मुखीकृत पशु आवास में सर्वाधिक धूप और अच्छी हवा का प्रवाह बना रहता है।
- उच्च वर्षा के क्षेत्रों में ऊंचे मंच वाले (1-1.5 मीटर) पशु आवास ज्यादा फायदेमंद होते हैं ताकि आसानी से सफाई की जा सके तथा गोबर और मूत्र संग्रह कर सकें।

चारागाह में भेड़ों का प्रबंधन

आपदा के दौरान प्रमुख पशु खाद्य विकल्प

- **दाना मिश्रण के पूरक:** लघु अवधि के लिए तो भूसे के सेवन से काम चल सकता है। उत्पादन के उद्देश्य से भूसे के साथ पूरक आहार भी देना चाहिए।
- **भूसे का यूरिया उपचार:** क्षेत्र की स्थिति के तहत इस उपचार में व्यावहारिक क्षमता है। भूसे को यूरिया उपचारित करने से 1-2 लीटर/पशु/दिन की दर से दूध का उत्पादन बढ़ जाता है। ऐसी सरल प्रक्रिया किसानों को बेहतर आर्थिक लाभ प्रदान करती है। इससे हरा चारा उत्पादन के लिए आवश्यक क्षेत्र को कम करने में भी मदद मिल सकती है। एक टन भूसे के प्रसंस्करण के लिए 40 कि.ग्रा. यूरिया को 350-500 लीटर पानी में अच्छी तरह मिलाकर भूसे के ऊपर इसका छिड़काव करना चाहिए (कुमार और पासवान, 2012)।
- **यूरिया गुड़ तरल आहार (यू.एम.एल.डी.):** पोषक तत्वों (प्रोटीन, खनिज और विटामिन) के सप्लीमेंट के बाद इस प्रकार के तरल आहार को एक संभावित सूखे/कमी चारे के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।
- **यूरिया गुड़ खनिज ब्लॉक (यू.एम.एम.बी.):** भारत में सूखे में आमतौर पर जुगाली करने वाले पशुओं के लिए उपलब्ध आहार रेशेदार किस्म के, मुख्य रूप से फसल के अवशेष (भूसा और पुआल) और सूखी घास होते हैं (कुमार और पासवान, 2012)। यू.एम.एम.बी. तैयार करने में गुड़-38 भाग; यूरिया-10 भाग; सीमेंट-10 भाग, गेहूं की भूसी-40 भाग; नमक-1 भाग; खनिज मिश्रण-1 भाग; विटाब्लेण्ड-10 ग्राम/100 कि.ग्रा. का उपयोग किया जाता है। इस सामग्री को मिलाने के लिए पानी, यूरिया, नमक, खनिज मिश्रण, विटाब्लेण्ड, गुड़ और गेहूं की भूसी का क्रमवार उपयोग किया जाता है। ब्लॉकों के रूप में विशेष रूप से डिजाइन करने के लिए मिश्रण को नए सांचे में हस्तांतरित किया जाता है। ब्लॉक को 24 घंटे की अवधि के लिए व्यवस्थित करने के लिए छोड़ा जाता है।
- **संपीडित पूर्ण आहार ब्लॉक (सी.सी.एफ.बी.):** पूर्ण आहार ब्लॉक दाना मिश्रण और चारा, मिश्रित रूप में एक साथ खिलाने की प्रणाली है। पूर्ण आहार ब्लॉक प्रणाली के द्वारा चारा और श्रम लागत को कम करके उत्पादन को अधिकतम किया जा सकता है। ब्लॉक बनाने के लिए गेहूं की भूसी, चावल की भूसी, सरसों, मूंगफली खली, एक प्रतिशत यूरिया, गुड़, खनिज और नमक की आनुपातिक मात्रा का प्रयोग होता है। पूर्ण आहार ब्लॉक, 0.5 घन फीट स्थान में 13 प्रतिशत प्रोटीन और 50 से 55 प्रतिशत तक कुल सुपाच्य पोषक तत्वों से युक्त रहता है। इसका पोषक मूल्य सामान्य आहार की तुलना में 33 प्रतिशत अधिक होता है।
- **साइलेज प्रौद्योगिकी:** फसल के अवशेषों को एन्सिलिंग के द्वारा कमी की अवधि के दौरान पशुओं को खिलाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।
- **पशु चारा के रूप में गन्ना फसल के अवशेषों का प्रयोग:** गन्ने के उत्पाद अर्थात गन्ने का सबसे ऊपरी हिस्सा, निचोड़ा हुआ हिस्सा और गुड़ का इस्तेमाल, कमी की अवधि के दौरान मवेशी और भैंस को खिलाने में किया जा सकता है। यूरिया, गन्ने के निचोड़े हुए हिस्से की पोषकता को बढ़ाने में इस्तेमाल होता है। इसकी पाचन शक्ति भाप उपचार के द्वारा बढ़ाई जा सकती है (सिंह और चंद्रमणि, 2010)।
- **पेड़ के पत्ते और सब्जी पत्ते:** पेड़ के पत्ते (नीम, आम, बरगद, पीपल, बबूल, सुबबूल, महुआ आदि) आसानी से उपलब्ध हैं, जिन्हें हरे चारे की कमी के दौरान इस्तेमाल किया जा सकता है। ये प्रोटीन (6-20 प्रतिशत सीपी), कैल्शियम (0.5-2.5 प्रतिशत) और विटामिन-ए के अच्छे स्रोत होते हैं। पेड़ के 50 कि.ग्रा. पत्ते, 5 कि.ग्रा. मूंगफली खली, 25 कि.ग्रा. विलायती बबूल फली, 15 कि.ग्रा. गुड़, 1 कि.ग्रा. यूरिया और 2 कि.ग्रा. खनिज मिश्रण का उपयोग कर एक अच्छा पूर्ण आहार तैयार किया जा सकता है। यह पशुओं के रखरखाव के लिए काफी है (कुमार और पासवान, 2012)।

एवं सहयोगी, 2014)।

चारागाहों के उपयोग के इष्टतम स्तर को सुनिश्चित करने के लिए कुशलता से चराई प्रबंधन करने की जरूरत है ताकि वर्ष भर चारे की उपलब्धता सुनिश्चित हो सके। सूखावधि के दौरान, चरवाहे आवश्यक चारे के लिए उचित स्थान की तलाश में अपने पशुओं के साथ बेहतर स्थानों की ओर पलायन करने का प्रयास करते हैं। इस प्रवास में कई बार कभी-कभी उपलब्ध दुर्लभ चारा संसाधनों के लिए स्थानीय लोगों के साथ सामाजिक संघर्ष भी पैदा होता है। इसलिए चारा और चारा आधार दोनों को ही गांव और घरेलू स्तर पर मजबूत किया जाना चाहिए। साधारणतः भेड़ों की चारा आवश्यकताएं बहुमत आम संपत्ति संसाधनों (सी.पी.आर.) से पूरी होती हैं। अतिचराई से अनुकूल घास प्रजाति की संख्या के फिर से पनपने पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। यह अनियंत्रित चराई का गंभीर प्रभाव न केवल सी.पी.आर. से चारे की उपलब्धता पर पड़ता है, बल्कि चारे की गुणवत्ता पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है (रमण, 2014)।

देश के कई क्षेत्रों में सी.पी.आर. गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हो गए हैं। अधिक उपज देने वाली फली और नियमित अंतराल पर गैरफली दार चारा किस्मों के साथ चारागाह फिर से बोने के माध्यम से सी.पी.आर. के पुनरुद्धार की जरूरत है। सी.पी.आर. की वहन क्षमता में सुधार और चराई प्रतिबंधन, दोनों को एक ठोस कदम के रूप में अपनाया जा सकता है।

भाकृअनुप-क्रीडा के एक अनुसंधान कार्यक्रम में यह पाया गया है कि भेड़ का जब वन एवं चारागाह प्रणाली के साथ एकीकृत पालन किया जाता है, तो ईंधन की लकड़ी और मिट्टी की उर्वरता में सुधार के अलावा बंजर भूमि से एक हैक्टर में 25,000-30,000 रुपये का शुद्ध लाभ मिल सकता है। साथ ही भेड़ का जब बागवानी एवं चारागाह प्रणाली के साथ एकीकृत पालन किया जाता है तो एक हैक्टर से 4,000-5,000 रुपये की अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है (पंकज एवं रमण, 2013)।

सीमित सिंचाई द्वारा गेहूं की सूखी बुआई

विनोद कुमार तिवारी[1], रमेश अमुले[2] और **रानी अमुले**
कृषि विज्ञान केंद्र, मझगवां, सतना (मध्य प्रदेश)

"आजकल गेहूं की खेती वर्षा आधारित एवं सीमित सिंचाई करके की जा रही है। कम पानी की उपलब्धता होने पर गेहूं की कम पानी की आवश्यकता वाली प्रजातियों का चुनाव कर सूखी बुआई की जा सकती है। इस प्रकार समय की बचत के साथ-साथ खर्च को कम करके अधिकतम उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। इस विधि में पलेवा न देकर खरीफ फसल की कटाई करने के बाद दो या तीन जुताई कर तुरन्त बाद गेहूं की सूखी बुआई कर एक सिंचाई करें।"

गेहूं की सूखी बुआई है फायदेमंद

हमारे देश में गेहूं की खेती सभी प्रदेशों में की जाती है। बढ़ती आबादी की आहार मांग के लिए आवश्यक है कि कृषि आदानों पर कम से कम खर्च कर गेहूं का अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जाए। इस क्रम में पानी का न्यूनतम प्रयोग करना भी शामिल है।

- दो या तीन जुताई करके 5 टन प्रति हैक्टर सड़ी गोबर की खाद अंतिम जुताई के समय खेत में अच्छी तरह मिला दें।
- वीटावॉक्स 75 डब्ल्यू.जी. 2 से 2.5 ग्राम दवा प्रति कि.ग्रा., साथ ही साथ एजेक्टोबैक्टर 5-10 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज के साथ मिलाकर उपचारित करें।
- उपचारित बीज के साथ 100 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर 60 : 20 : 20 अनुपात में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश प्रति हैक्टर की दर से डालें। इसके लिए यूरिया 115 कि.ग्रा., डी.ए.पी. 50 कि.ग्रा. एवं म्यूरेट ऑफ पोटाश 15 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर उर्वरकों को उपयोग करें।
- यूरिया की आधी मात्रा बुआई के समय एवं शेष मात्रा का उपयोग दो बार में करें। पहली मात्रा का प्रयोग प्रथम सिंचाई के 25 से 30 दिनों बाद दूसरी मात्रा का 80 से 85 दिनों के बाद करें।
- गेहूं की अच्छी उपज के लिए 19:19:19 अनुपात में एन.पी.के की 150 ग्राम मात्रा प्रति टंकी (15 लीटर पानी) का प्रयोग खड़ी फसल में 30-35 दिनों में तथा दूसरी मात्रा का 45-50 दिनों की अवस्था पर छिड़काव करें।

खरपतवार नियंत्रण

संकरी पत्ती वाले खरपतवार

क्लोडिनोफोप प्रोपरगाइल (15 डब्ल्यू.पी.) की 400 ग्राम मात्रा को 500 से 600 लीटर पानी के साथ मिलाकर बुआई के 20 से 25 दिनों की अवस्था में प्रति हैक्टर डालें। सल्फोसल्फ्यूरॉन (75 डब्ल्यू.पी.) की 33 ग्राम मात्रा को 500 से 600 लीटर पानी के साथ मिलाकर बुआई के 20 से 25 दिनों की अवस्था पर प्रति हैक्टर की दर से डालें।

चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार

मेटासल्फ्यूरॉन की 20 ग्राम मात्रा को 500 से 600 लीटर पानी के साथ मिलाकर बुआई के 20 से 25 दिनों की अवस्था पर प्रति हैक्टर की दर से डालें।

संकरी एवं चौड़ी दोनों प्रकार के खरपतवार

सल्फोसल्फ्यूरॉन (75 प्रतिशत)+ मेटासल्फ्यूरॉन (5 प्रतिशत) की 32 ग्राम मात्रा को 500 से 600 लीटर पानी में मिलाकर 20 से 25 दिनों की अवस्था पर प्रति हैक्टर डालें। क्लोडिनोफोप प्रोपरगाइल+मेटासल्फ्यूरॉन की 400 ग्राम मात्रा को 500 से 600 लीटर पानी के साथ मिलाकर बुआई के 20 से 25 दिनों की अवस्था पर प्रति हैक्टर डालें।

[1]वैज्ञानिक (सस्य); [2]पौध सुरक्षा

कीट नियंत्रण

दीमक नियंत्रण के लिए क्लोरोपायरीफॉस (20 ई.सी) की 2 लीटर मात्रा को 500 से 600 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। फिप्रोनिल 15 कि.ग्रा. मात्रा को 20 कि.ग्रा. रेत के साथ मिलाकर प्रति हैक्टर प्रयोग करें।

सारणी : गेहूं की कम सिंचाई वाली मुख्य किस्में

प्रजातियां	सिंचाई संख्या	उत्पादन (क्विं./है.)
जे.डब्ल्यू.-17	1-2	30-35
जे.डब्ल्यू.-3020	1-3	30-35
एच.आई.-1531 (हर्षिता)	1-3	35-40
एच.आई.-1500	1-2	30-35

सैनिक कीट नियंत्रण के लिए कार्बारिल 50 प्रतिशत धूल की 2.5 कि.ग्रा. मात्रा का प्रति हैक्टर छिड़काव करें।

चूहों के नियंत्रण के लिए जिंक फॉस्फाइड का 2:17:1 (दवा:आटा:तेल) के अनुपात को साथ मिश्रण तैयार कर चूहे के बिल पर रखें।

रोग नियंत्रण

गेरुआ रोग के नियंत्रण के लिए मैन्कोजेब की 2 कि.ग्रा. मात्रा को 700 से 800 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

कंडुआ रोग नियंत्रण के लिए कार्बोक्सिन 75 प्रतिशत की 2.5 ग्राम मात्रा को प्रति कि.ग्रा. बीज के साथ उपचारित करें।

पाउडरी मिल्ड्यू के नियंत्रण के लिए कैराथेन या सल्फेक्स की 1-1.5 कि.ग्रा. मात्रा को 500 से 600 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

सूखी बुआई के लाभ

- फसल का जमाव जल्दी एवं समय की बचत
- कम पानी की आवश्यकता, जिससे धन की बचत
- खरपतवार की समस्या में कमी
- कम पानी की खपत वाली प्रजातियों के प्रयोग से संरक्षित जल का समुचित उपयोग संभव

IFFCO

पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly owned by Cooperatives

50 1967 2017
स्वर्ण जयंती
Golden Jubilee

इफको के स्वर्णिम 50 वर्ष

कृषि, सहकारिता एवं ग्रामीण विकास को समर्पित

नीम लेपित यूरिया | एन पी के | डी ए पी | एन पी | बॉयो फर्टिलाइजर
वॉटर सोल्यूबल फर्टिलाइजर | माईक्रो न्यूट्रीएन्ट फर्टिलाइजर

Follow us :

YouTube IFFCO live
iffcolive.com

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व

INDIAN FARMERS FERTILISER COOPERATIVE LIMITED

IFFCO Sadan, C-1 District Centre, Saket Place, New Delhi - 110017, INDIA
Phones : 91-11-26510001, 91-11-42592626. Website : www.iffco.coop

जायद में मूंगफली उत्पादन

सर्वेश कुमार और **आर.सी. शर्मा**
वैज्ञानिक, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र, जिला हरदा-461331 (मध्य प्रदेश)

"मूंगफली का वैज्ञानिक नाम एरेकिस हाइपोजिया है। यह एक दलहनी कुल की फसल है। यह सभी प्रकार की दालों में सर्वाधिक सूखा सहन करने वाली फसल है। इस फसल को तिलहन फसल समूह का राजा भी कहा जाता है। इसमें 46-55 प्रतिशत तक तेल तथा 28-30 प्रतिशत तक प्रोटीन की उपलब्धता के कारण अन्य तिलहनी फसलों की तुलना में यह अधिक ऊर्जा प्रदान करती है। मूंगफली की पाचनशीलता लगभग 86.08 प्रतिशत तक होती है। इसमें विटामिन्स एवं खनिज पदार्थ जैसे आवश्यक पोषक तत्व भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इन्हीं पोषक मानों के कारण मूंगफली को गरीबों का बादाम भी कहा जाता है। खरीफ मौसम की यह मुख्य तिलहनी फसल है। मूंगफली की खेती सफलतापूर्वक उन सभी क्षेत्रों में की जा सकती है, जहां खरीफ मौसम में मूंगफली उगाई जाती हो तथा गर्मियों के मौसम में सिंचाई के उत्तम साधन उपलब्ध हो सकें।"

मूंगफली एक अच्छे फसलचक्र वाली एवं भूमि को आच्छादित करने वाली फसल है। इसकी पैदावार मुख्यत: उष्ण कटिबंध या अर्धशुष्क क्षेत्रों में सरलता से की जा सकती है। इसको फसलचक्र में लाने से वहां पर मृदाक्षरण एवं भूमि कटाव को एक निश्चित सीमा तक रोका जाना संभव है। यह फसल मृदा संरक्षण एवं जल संरक्षण को प्रोत्साहित करती है। इसकी जड़ों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणु (राइजोबियम जाति) भी पाए जाते हैं। यह वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को भूमि में लगभग 200 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से स्थिर करती है। इससे नाइट्रोजनयुक्त रासायनिक उर्वरकों की खपत घटती है साथ ही इससे होने वाली हानियों से भी बचा जा सकता है।

खेत की तैयारी

जलवायु

इसकी खेती के लिए लगभग 70-90^0 फारेनहाइट तापमान एवं ठंडी रात फसल परिपक्वता के समय तथा वार्षिक वर्षा 50-125 सें.मी. होनी चाहिए।

मृदा एवं जुताई

मूंगफली की फलियां भूमि के अंदर विकसित होती हैं। इसकी फसल के लिए अच्छे जल निकास वाली, भुरभुरी दोमट एवं रेतीली दोमट, कैल्शियम और मध्यम जैव पदार्थों से युक्त मृदा उत्तम रहती है। इस फसल के लिए मृदा का पी-एच मान 5-8.5 तक उपयुक्त रहता है। सामान्यत: 12 से 15 सें.मी. तक गहरी जुताई अच्छी रहती है। गहरी जुताई करने से इसकी जड़ें जमीन में काफी गहरी चली जाती हैं। इससे खुदाई में काफी परेशानी आती है। एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से फिर देसी हल या हैरो से 2-3 जुताई करके खेत को बुआई के लिए समतल कर लेना चाहिए।

भूमि उपचार

मूंगफली की फसल में मुख्यत: सफेद लट, दीमक, शीर्ष गलन रोग एवं पत्ती धब्बा रोग इत्यादि का प्रकोप अधिक होता है। इसलिए अन्तिम जुताई के समय फोरेट-10 जी या कार्बोफ्यूरॉन, हेप्टाक्लोर आदि से 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से मृदा को उपचारित कर लेना चाहिए। दीमक का प्रकोप कम करने के लिए खेत की पूरी सफाई जैसे सूखे डंठल एवं कच्ची खाद आदि को खेत से हटा देना अत्यंत जरूरी होता है।

बीज की मात्रा एवं बुआई

जायद मूंगफली की बुआई के लिए सबसे उपयुक्त समय फरवरी के द्वितीय सप्ताह से मार्च के दूसरे सप्ताह तक होता है। झुमका किस्म की बीज दर 100 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर है। इसके अलावा विस्तारी एवं अर्ध विस्तारी किस्मों के लिए 60-80 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर की दर से बुआई करनी चाहिए। झुमका किस्म में कतार से कतार की दूरी 30 सें.मी. एवं पौधों से पौधों के बीच में दूरी 10 सें.मी. रखी जाती है। विस्तारी एवं अर्ध विस्तारी किस्मों के लिए कतार से कतार की दूरी 45 सें.मी. एवं पौधों से पौधों की दूरी 15 सें.मी. उपयुक्त रहती है।

बीजोपचार

कृषि उत्पादन की मूलभूत इकाई बीज ही है। बीज का उत्पादन एवं उत्पादकता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। अत: किसानों को सदैव प्रमाणित बीज ही खरीदकर बोने चाहिए। बीज को कवक एवं जीवाणु इत्यादि के प्रभाव से बचाने के लिए क्रमश: कवकनाशी (2.5 ग्राम थाईरम या कार्बेंडाजिम या 2 ग्राम मेंकोजेब से प्रति कि.ग्रा. बीज की दर) से, कीटनाशी (एक लीटर क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई.सी. से प्रति 40 कि.ग्रा. बीज की दर) से तथा अंत में राइजोबियम कल्चर एवं फॉस्फेट विलेय जीवाणु कल्चर से उपचारित करना चाहिए।

मूंगफली की तैयार फसल

उर्वरक

मूंगफली एक दलहनी फसल है इसलिए नाइट्रोजन की कम मात्रा की जरूरत होती है। 20-30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 30-40 कि.ग्रा. पोटाश का प्रति हैक्टर की दर से उपयोग करना चाहिए। फॉस्फोरस, पोटाश एवं आधी मात्रा नाइट्रोजन की भूमि में अन्तिम जुताई के साथ लाइनों में बुआई कर देनी चाहिए।

नाइट्रोजन

नाइट्रोजन से पौधों की वानस्पतिक वृद्धि तेजी से होती हैं एवं यह पर्णहरित क्लोरोफिल व प्रोटीन निर्माण में मुख्य योगदान करता है। मूंगफली में 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर देते हैं। नाइट्रोजन के मुख्य स्रोत किसान खाद, अमोनियम सल्फेट, यूरिया इत्यादि हैं। नाइट्रोजन की पूर्ति के लिए मूंगफली में अमोनियम

सारणी: मूंगफली में सिंचाई आवश्यकताएं

सिंचाई संख्या	अवधि	अवस्थाएं
प्रथम	बुआई के 25-30 दिनों बाद	बढ़वार अवस्था पर
द्वितीय	बुआई के 35-40 दिनों बाद	फूल निकलते समय
तृतीय	बुआई के 45-50 दिनों बाद	सुइंया बनते समय
चौथी	बुआई के 55-60 दिनों बाद	फलियां बनते समय
पांचवीं	बुआई के 65-70 दिनों बाद	फलियों का विकास होते समय
छठी	बुआई के 80-85 दिनों बाद	दाना पकते समय

मूंगफली का क्षेत्र

भारत, मूंगफली उत्पादन एवं क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व में प्रथम स्थान पर है। देश में इसके कुल उत्पादन का 81 प्रतिशत भाग तेल निकालने में, 12 प्रतिशत बीज के रूप में, 6 प्रतिशत खाद्य के रूप में एवं शेष 01 प्रतिशत निर्यात में उपयोग किया जा रहा है। मूंगफली निर्यात करने वाले देशों में भी भारत अग्रणी देश है। इसके कुल उत्पादन एवं क्षेत्रफल का लगभग 91 प्रतिशत भाग केवल गुजरात, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु एवं ओडिशा राज्यों में पाया जाता है। शेष भाग राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं पंजाब आदि राज्यों में बिखरे हुए हैं। इसके कुल क्षेत्रफल के लगभग 87.7 प्रतिशत भाग पर खरीफ मौसम में एवं शेष भाग पर जायद मौसम में मूंगफली उगाई जाती है। मूंगफली उत्पादन में मध्य प्रदेश का देश में छठा स्थान है। यहां कुल 202 हजार हैक्टर क्षेत्र से 302 हजार क्विंटल मूंगफली उत्पादन होता है। मध्य प्रदेश की उत्पादकता 1497 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर है। मध्य प्रदेश में मूंगफली उत्पादन मालवा के पठार एवं नर्मदा घाटी के मुख्य जिले मंदसौर, धार, रतलाम, खरगोन, झाबुआ, बेतुल, छिंदबाड़ा, उज्जैन, राजगढ़ व शांजापुर इत्यादि में होता है।

भंडारण

भंडारण से पूर्व पके हुए दानों में नमी की मात्रा 8-10 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। अन्यथा अधिक नमी होने पर मूंगफली में पीली फफूंद (एस्परजीलस फ्लेवस) द्वारा एफ्लॉटाक्सिन नामक विषैला तत्व पैदा हो जाता है। यह मानव व पशु आदि के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। यदि मूंगफली को तेज धूप में सुखाया जाता है तो अंकुरण क्षमता का ह्रास होता है। इसलिए अंकुरण क्षमता को बनाए रखने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए:

- उपयुक्त नमी होने पर ही मूंगफली को जमीन से निकालें ताकि मूंगफली भूमि में ना रहे।
- मूंगफली को भूमि से निकालने के बाद इसके पौधों को उल्टा करके, छोटे-छोटे गट्ठर बनाकर छायादार स्थान में सुखाना चाहिए।
- जब मूंगफली सूख जाए तो उसको पौधों से अलग कर उनको 8-10 प्रतिशत नमी रहने तक और सुखाना चाहिए।
- पूर्णतया सूखी फलियों को हवादार क्षेत्र में भंडारित करना चाहिए। जहां पर नमी ग्रहण नहीं कर सकें या फिर प्रत्येक बोरे में कैल्शियम क्लोराइड 300 ग्राम प्रति 40 कि.ग्रा. बीज की दर से डालकर भंडारण करें।
- भंडारण के समय हानि पहुंचाने वाले कीट-पतंगों से सुरक्षा रखें, जिससे भंडारण के समय फलियां खराब न हों।

सल्फेट अधिक उपयुक्त होता है।

फॉस्फोरस

दलहनी कुल की फसलों के लिए फॉस्फोरस एक आवश्यक तत्व होता है। इससे जड़ों में पाई जाने वाली ग्रंथियों का विकास होता है। यह फल एवं बीज के निर्माण में भी सहायक होता है। सिंगल सुपर फॉस्फेट मूंगफली की फसल के लिए अच्छा पोषण स्रोत है। मूंगफली में 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस पेन्टा ऑक्साइड प्रति हैक्टर देते हैं।

पोटाश

पोटाश राइजोबियम जीवाणु को भोजन प्राप्त करवाने में सहायक होता है। यह नाइट्रोजन की अधिकता के प्रतिकूल प्रभाव को भी रोकता है। पोटाश से बीजों का वजन बढ़ता है। बीज चमकीले एवं सुडौल बनते हैं। सल्फेट ऑफ पोटाश इसका अच्छा स्रोत है।

कैल्शियम

मूंगफली की फसल में कैल्शियम का उत्पादन पर काफी प्रभाव पड़ता है। कैल्शियम से फली में दानों का पूर्ण विकास होता है। जिप्सम इसका महत्वपूर्ण स्रोत है, उससे मृदा का पी-एच भी संतुलित होता है।

सल्फर

सल्फर, तिलहनी फसलों के लिए एक प्रमुख तत्व है। इसका सीधा प्रभाव तेल की मात्रा पर पड़ता है। यह मृदा में उपस्थित जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ाता है। यह कवकनाशी के रूप में भी कार्य करता है। इससे फफूंदी से संबंधित रोगों का नियंत्रण होता है। इनकी पूर्ति के लिए जिप्सम, सिंगल सुपर फॉस्फेट एवं अमोनियम सल्फेट इत्यादि का प्रयोग कर सकते हैं। कैल्शियम एवं सल्फर को भूमि में 5 सें.मी. गहराई तक मिलाते हैं। इससे विकसित हो रही कलियों और सुइयों द्वारा इसको ग्रहण कर लिया जाता है। जिप्सम का प्रयोग 500 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से बुआई के 45-60 दिनों के बीच मृदा की सतह में इस प्रकार करना चाहिए कि सभी पौधे इसे आसानी से ग्रहण कर सकें।

सिंचाई

खरीफ की फसल पूर्णत: मानसून पर ही आधारित होती है। यदि मूंगफली सिंचाइयों की विशिष्ट आवश्यकताओं में सिंचाई कर दी जाए तो प्रति हैक्टर उपज बढ़ जाती है। सामान्यत: जायद में बोई गई फसल को पलेवा के अतिरिक्त 6 सिंचाइयों की विभिन्न अवस्थाओं में आवश्यकता होती है। परिस्थितियों एवं भूमि के अनुसार सिंचाइयों की संख्या में वृद्धि संभव है और यह आठ तक हो सकती है। मूंगफली की फसल में शाखा बनते, फूल निकलते एवं फली का विकास होते समय सिंचाई देना नितांत आवश्यक है। ये अवस्थाएं अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं। इन अवस्थाओं पर नमी की कमी पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। फव्वारा सिंचाई पद्धति जायद मूंगफली के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। इससे पानी की बचत के साथ उत्पादन भी अधिक प्राप्त होता है। हल्की बलुई दोमट भूमि में 9-10 सिंचाई देना लाभदायक रहता है।

मूंगफली की उन्नत किस्में

उन्नत बीज केवल शुद्ध किस्मों से प्राप्त होता है। स्वस्थ बीज से ही उत्तम फसल प्राप्त की जा सकती है, जो श्रेष्ठ उत्पादन दे सकती है। आधुनिक हरित क्रान्ति की सफलता का श्रेय भी उन्नत बीजों एवं किस्मों को दिया जाता है। उन्नत किस्मों के बीज आधुनिक कृषि का प्रमुख आधार हैं। इन किस्मों के बीजों की प्रति हैक्टर पैदावार प्रचलित देसी किस्मों के बीजों से कई गुना अधिक होती है। ये अधिक उत्पादकता के साथ-साथ प्रतिकूल आवश्यकताओं के प्रति अधिक सहनशील एवं प्रतिरोधी होते हैं।

संकर किस्मों का प्रयोग करते समय संतुलित उर्वरकों का उपयोग, उचित जल निकास एवं जल प्रबंध पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए। अत: जायद में मूंगफली का आधुनिक तकनीकी से उत्पादन करने के लिए इसकी उन्नत किस्में इस प्रकार हैं:

टी.जी.-26: यह किस्म मध्य प्रदेश में रबी एवं जायद दोनों में बुआई के लिए अच्छी है। यह 110-120 दिनों में तैयार हो जाती है। उपज 16-18 क्विंटल प्रति हैक्टर देती है। इसमें 49 प्रतिशत तेल पाया जाता है। फलियों में दानों का अनुपात 65 प्रतिशत होता है।

जी.जी.-02: यह मूंगफली की गुच्छेदार किस्म है। इसका उत्पादन 28-30 क्विंटल प्रति हैक्टर तक होता है। इसमें तेल की मात्रा 50-55 प्रतिशत तक होती है। यह लगभग 130-135 दिनों में पककर तैयार हो जाती है।

जे.जी.एन.-3: यह किस्म मध्य प्रदेश में जायद में बुआई के लिए एवं सूखारोधी है। लगभग सभी प्रकार की मृदाओं से अच्छा उत्पादन देने वाली है। यह किस्म कुल 90-100 दिनों में पककर तैयार होती है। इसमें 50 प्रतिशत तेल पाया जाता है। इसका उत्पादन 15-17 क्विंटल फलियां प्रति हैक्टर है।

टी.ए.जी.-24: यह मूंगफली की गुच्छेदार किस्म है। जायद की बुआई के लिए नई सर्वोत्तम किस्म है। इसकी पैदावार 30-35 क्विंटल प्रति हैक्टर तक होती है। साथ ही कम समय में पककर तैयार हो जाती है। इसमें तेल की मात्रा 40 से 50 प्रतिशत तथा फलियों में दाने का अनुपात 65 प्रतिशत होता है।

एस.बी.-11: यह किस्म खरीफ व जायद दोनों मौसम में उगाई जाती है। खरीफ की अपेक्षा जायदा अधिक उपज देती है। इसमें तेल की मात्रा 49-50 प्रतिशत होती है। इस में यह किस्म की औसत उपज 25-30 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

डी.एच.-86: यह झुमका किस्म जायद के लिए उपयुक्त है। इसकी औसत उपज 30-35 क्विंटल प्रति हैक्टर तक होती है। यह किस्म 120-125 दिनों में पककर तैयार होती है। इसके दानों में तेल की मात्रा लगभग 48 प्रतिशत होती है। फलियों में दानों का अनुपात 64-65 प्रतिशत तक होता है।

मूंगफली की फलियों के गुच्छे

अंतरासस्य क्रियाएं एवं खरपतवार नियंत्रण

जायद की अपेक्षा खरीफ मौसम में खरपतवार आदि से फसल को अधिक नुकसान पहुंचता है। इसमें निराई-गुड़ाई जल्दी कर देनी चाहिए। बुआई के 30-35 दिनों के समय ही फसल को खरपतवाररहित कर देना चाहिए। इस समय खरपतवार से 80 प्रतिशत तक फसल को नुकसान हो जाता है। साथ ही समय पर इसमें मिट्टी चढ़ाने का कार्य भी कर देना चाहिए। इससे सुइयां क्रियाशील रहती हैं। फसल में सुइयां बनना प्रारंभ होने तक निराई-गुड़ाई इत्यादि सभी कार्य पूर्ण कर लेने चाहिए। बाद में सुइयां खराब होने का खतरा रहता है। साथ ही समय-समय पर सिंचाई एवं पौध संरक्षण कार्य करते रहना चाहिए।

जायद में जहां खरपतवार अधिक होते हैं। वहां उनके नियंत्रण के लिए निम्नलिखित खरपतवारनाशियों का छिड़काव करना चाहिए।

- **बुआई से पहले:** फ्लुक्लोरालिन 45 प्रतिशत ई.सी. का 0.5-1.00 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव कर तुरंत भूमि में मिला देना चाहिए।
- **अंकुरण से पहले:** एलाक्लोर 50 ई.सी. या 10 प्रतिशत जी (दानेदार) का 1-1.5 कि.ग्रा. नाइट्रोफेन का 0.25-0.75 कि.ग्रा., पेंडिमेथालिन 30 प्रतिशत ई.सी. या 5 प्रतिशत जी (दानेदार) का 1-1.25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से भूमि उपचारित करें।
- **अंकुरण के बाद:** इमेजेथापिर 10 प्रतिशत एस.एल. 0.1-0.2 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से लगभग 5-25 दिनों के दौरान एक बार छिड़काव कर भूमि उपचारित करना चाहिए।

मूंगफली की खुदाई

जब पौधों की पत्तियों का रंग पीला पड़ने लगे एवं फलियों के अंदर का टैनिन का रंग उड़ जाए तो खेत में हल्की सिंचाई कर खुदाई कर लें एवं पौधों से फलियों को अलग कर लें। ■

राइजोबियम कल्चर से बीजोपचार

राइजोबियम कल्चर से बीजों को उपचारित करने के लिए 2-5 लीटर पानी में 300 ग्राम गुड़ डालकर और उसे गर्म करके एक घोल तैयार कर लें। फिर घोल को ठंडा करके उसमें 600 ग्राम राइजोबियम जीवाणु मिलाएं। यह घोल एक हैक्टर में बुआई करने वाले बीज के लिए पर्याप्त होता है। इस घोल की बीजों पर समान परत हाथों द्वारा धीरे-धीरे मिलाकर चढ़ानी चाहिए। इसके बाद फॉस्फेट विलेय जीवाणु कल्चर से उपचारित करते हैं। उपचारित बीजों को छायादार स्थान में सुखाकर शीघ्र बुआई के लिए प्रयोग करें। ऐसा करने से मूंगफली के उत्पादन में 12-15 प्रतिशत तक उपज बढ़ जाती है। फॉस्फेट विलेय जीवाणु से मृदा में उपस्थित अघुलनशील फॉस्फोरस, घुलनशील फॉस्फोरस के रूप में उपलब्ध हो जाता है। इसे पौधे आसानी से ग्रहण कर लेते हैं। परिणामस्वरूप उत्पादन में बढ़त एवं दानों में चमक एवं सुडौलता भी बढ़ती है। इसकी वजह से बाजार में अच्छा मूल्य प्राप्त होता है।

मूंगफली उत्पादन में हार्मोन्स का उपयोग

मूंगफली में हार्मोन्स का उपयोग निम्न तीन समस्याओं के कारण किया जाता है:

- सम्पूर्ण फसलकाल में फूल निकलते रहना।
- मूंगफली में सुइयों की परिपक्वता अवस्था का 50 प्रतिशत तक निर्माण होना।
- परिपक्व अवस्था में नमी मिलने पर परिपक्व फलियों का अंकुरण होना।

पौधों की 50 प्रतिशत शक्ति अर्द्धपरिपक्व फलियों के उत्पादन तथा परिपक्व फलियों के अंकुरण में नष्ट हो जाती है। इन दोनों अवस्थाओं के कारण मूंगफली की प्रति हैक्टर उत्पादन एवं गुणवत्ता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए प्रभावित फलियों की संख्या प्रति इकाई उत्पादन, परीक्षण वजन इत्यादि को बढ़ाने तथा समकालिक पुष्पन के लिए एन.ए.ए. नामक हार्मोन का उपयोग किया जा सकता है। मूंगफली में हार्मोन्स उपयोग के लिए उपयुक्त समय बुआई के लगभग 40वें एवं 80वें दिन पर आदर्श होता है और 20 पी.पी.एम. सांद्रता वाला घोल अधिक प्रभावी रहता है। हार्मोन्स की अधिक सांद्रता वाले घोल की अपेक्षा निम्न सांद्रता वाले घोल का छिड़काव करना अधिक प्रभावी होता है। मूंगफली में फलियां अंकुरण होने की भी समस्या होने के कारण इसमें मैलिक हाइड्रोजाइड (एम.एच.) अम्ल का उपयोग प्रसुप्त अवस्था पैदा करने के लिए किया जाता है। इसमें लगभग 20-30 दिनों तक पानी मिलने पर भी फलियां अंकुरित नहीं होती हैं। सिंचाई करके शुष्क खेत से भी मूंगफली की खुदाई की जा सकती है। इसका व्यावसायिक स्तर पर कम उपयोग होता है।

ग्लोबल एग्रीकल्चर एंड फूड सम्मिट

झारखण्ड सरकार द्वारा 'वैश्विक कृषि एवं खाद्य सम्मेलन' (Global Agriculture and Food Summit) का आयोजन 29-30 नवंबर 2018 को रांची में किया गया। इस सम्मेलन का आयोजन प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी की 'कृषक आय दोगुनी' करने की धारणा पर आधारित है। इसका लक्ष्य झारखंड राज्य में कृषि क्षेत्र में उच्च मूल्य के निवेश अवसरों को उत्पन्न करना है।

इस सम्मेलन का उद्देश्य झारखण्ड राज्य की समृद्ध कृषि पारिस्थितिकी का प्रदर्शन कर के इसे कृषि एवं खाद्य क्षेत्र में इसकी क्षमताओं का उपयोग करने पर आधारित था। इसमें क्षेत्रवार मूल्यशृंखलाओं का विकास करके कृषि उत्पादों की मार्केटिंग को आसान बनाना शामिल है। इस आयोजन का उद्देश्य व्यापारी समुदाय, सरकार के प्रतिनिधि, कृषक उत्पादक संगठन, प्रगतिशील किसान, कृषि उद्यमियों और अन्य संबंधितों को एक साझा मंच प्रदान करना भी था।

कृषि उपकरणों, बागवानी एवं कृषि में जैविक खेती, एग्रीकल्चर स्टार्टअप और कृषि उद्यमों के लिए उपयुक्त वातावरण बनाकर खाद्य प्रसंस्करण, डेरी, मुर्गीपालन और मत्स्यपालन, पशु आहार एवं चारा आदि क्षेत्रों एवं निवेश संबंधी अवसरों पर इस सम्मेलन में ध्यान आकर्षित किया गया।

इस वैश्विक कृषि सम्मेलन में कृषि उद्यमी, प्रगतिशील कृषक, कृषक उत्पादक संगठन, कृषि उपकरण निर्माता, नीतिनिर्माता, विदेशी मिशन / भारत में दूतावास के प्रमुख, भारत एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मुख्य कार्यकारी अधिकारी, कृषि आदान आपूर्तिकर्ता, गैर सरकारी संगठन, शिक्षाविद और कृषि वैज्ञानिक, प्रमुख नेता, संगठित खुदरा विक्रेता एवं निर्यातकों ने बड़ी संख्या में भाग लिया। ■

धान-गेहूं फसल प्रणाली में विविधीकरण

तेज राम बंजारा[1], जे. एस. बोहरा[2], सुशील कुमार[3] और **आशीष राय[4]**

" धान-गेहूं फसल पद्धति विश्व की एक मुख्य फसल प्रणाली है। विश्व में इसके अंतर्गत लगभग 26 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल है। इसमें मुख्य रूप से दक्षिणी एशिया के देश (भारत, नेपाल, पाकिस्तान, बांग्लादेश) एवं चीन हैं। हमारे देश में लगभग 10.5 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल में यह प्रणाली अपनाई जाती है। वह मुख्य रूप से गंगा के मैदानी क्षेत्र से लेकर पंजाब और पश्चिम बंगाल तक फैली हुई है। पंजाब, हरियाणा एवं उत्तर प्रदेश में धान के बाद लगभग 95 प्रतिशत क्षेत्रफल में गेहूं की खेती की जाती है। इस फसलचक्र के विस्तार में हरित क्रान्ति का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। "

हरित क्रान्ति के दौरान गेहूं और धान की ऐसी किस्में विकसित की गईं, जो अधिक उपज देने वाली, प्रकाश असंवेदी तथा उर्वरक एवं सिंचाई के अनुक्रियाशील थीं। साथ ही साथ इनकी खेती में पोषक तत्व एवं जल प्रबंधन पर भी जोर दिया गया। वर्तमान में यह प्रणाली देश की बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्य आपूर्ति करने में सक्षम है। लेकिन लगातार एक ही प्रणाली को अपनाने से बहुत सारी समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं।

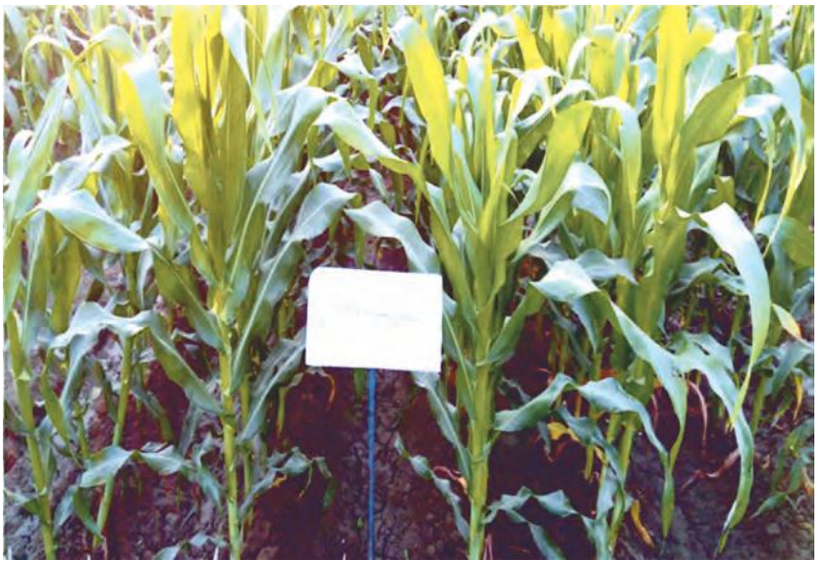

मक्का

धान-गेहूं फसल प्रणाली को लगातार अपनाने से आने वाली उपरोक्त मुख्य समस्याओं के समाधान के लिए कुछ संभावित उपाय निम्न हो सकते हैं:

- फसल विविधीकरण
- हरी खाद का प्रयोग
- समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन
- संरक्षित कृषि
- कुशल सिंचाई प्रबंधन
- समन्वित खरपतवार प्रबंधन
- समन्वित कीट एवं रोग प्रबंधन

[1]शोध छात्र, सस्य विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश); [2]प्राध्यापक, सस्य विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश); [3]भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रादेशिक अनुसंधान केन्द्र, भुज (गुजरात); [4]शोध छात्र, मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

फसल विविधीकरण

फसल विविधीकरण से तात्पर्य परंपरागत प्रचलित, अलाभकारी, अटिकाऊ फसल/फसल पद्धति के स्थान पर अधिक लाभकारी एवं टिकाऊ फसल/फसल प्रणाली को अपनाने से है। इसमें उपलब्ध संसाधनों का सदुपयोग समय, स्थिति एवं प्रवृत्ति के अनुरूप, इस प्रकार करना होता है ताकि यह लंबे समय तक उपलब्ध, लाभकारी एवं पर्यावरण संतुलन बनाए रखें। किसी प्रकार की बड़ी समस्या उत्पन्न न हो सके। दूसरे शब्दों में विविधीकृत फसलों से आशय किसी एक फसल पर निर्भर न होकर प्रक्षेत्र में अनेक फसलों को उगाने से है। इसके साथ-साथ अन्य कृषि आधारित व्यवसाय को अपनाना अच्छा रहता है। इससे कृषक एवं श्रमिकों को वर्ष भर रोजगार मिलता रहता है। मृदा की उर्वराशक्ति को कायम रखने के लिए फसल अवशेष एवं अन्य व्यवसाय से कच्चा पदार्थ प्राप्त किया जा सकता है। इन अवशेष पदार्थों का उपयोग कर मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशाओं में भी सुधार लाकर उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। इसी प्रकार पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है। फसल विविधीकरण स्थान विशिष्ट, किसान की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, कृषि जलवायु परिस्थिति एवं मृदा की भौगोलिक स्थिति पर निर्भर करता है।

फसल विविधीकरण के प्रकार

फसल विविधीकरण मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है:

- **समस्तरीय विविधीकरण:** इस विधि में परंपरागत प्रचलित, कम लाभकारी फसल को दूसरी अधिक लाभकारी एवं टिकाऊ फसलों से प्रतिस्थापित कर दिया जाता है अथवा फसल सघनीकरण किया जाता है।
- **उर्ध्वाधर विविधीकरण:** इसमें फसल उत्पाद का प्रसंस्करण कर बाजार मूल्य में वृद्धि की जाती है। इससे प्रति इकाई लाभ में बढ़ोतरी होती है, साथ-साथ रोजगार भी बढ़ता है।

विविधीकरण के विकल्प एवं संभावनाएं

देश के विभिन्न राज्यों में, धान खरीफ ऋतु की प्रमुख फसल है। देश की खाद्य सुरक्षा में भी इसका महत्वपूर्ण योगदान है। एक ही जगह पर इसकी लगातार खेती से बहुत सी समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। कुछ विशिष्ट स्थानों, जिसकी भौगोलिक स्थिति (निचली भूमि) के कारण जलभराव के समस्या उत्पन्न

सारणी 1. धान आधारित फसल प्रणाली में विविधीकरण के लिए अनुशंसित वैकल्पिक फसल प्रणाली का विवरण

स्थान	प्रचलित प्रणाली			उच्च उत्पादक प्रणाली		
	प्रणाली	प्रणाली उपज (टन प्रति है.)	शुद्ध आय (प्रति है.)	प्रणाली	प्रणाली उपज (टन प्रति है.)	शुद्ध आय (प्रति है.)
जम्मू (जम्मू एवं कश्मीर)	धान-गेहूं	11.3	68.6	धान-गेंदा-राजमा	30.1	168.0
				धान-आलू-प्याज	29.5	148.5
लुधियाना (पंजाब)	धान-गेहूं	13.2	59.7	मक्का-आलू-प्याज	27.9	125.0
				मूंगफली-आलू-बाजरा (चारे के लिए)	23.3	111.8
मोदीपुरम (उत्तर प्रदेश)	धान-गेहूं	12.9	32.2	मक्का-आलू-सूर्यमुखी	24.2	68.2
				धान-गेहूं-मूंग	15.9	40.3
साबोर (बिहार)	धान-गेहूं	11.0	43.0	धान-आलू-प्याज	29.0	83.7
				धान-गेहूं-मक्का	15.7	54.1
भुबनेश्वर (ओडिशा)	धान-धान	6.7	41.3	धान-मक्का-लोबिया	17.4	69.0
				धान-मक्का-मूंग	14.8	50.8
तंजावुर (तमिलनाडु)	धान-धान-तिल	13.7	78.0	धान-धान-बैंगन	18.3	108.2
हैदराबाद	धान-धान	7.9	22.9	मक्का-प्याज	12.3	59.6
				मक्का-टमाटर	12.1	48.1

फसल विविधीकरण के सिद्धांत

- कम आय वाली फसल का अधिक लाभकारी एवं टिकाऊ फसल से प्रतिस्थापन
- एकल फसल से बहुफसली एवं मिश्रित फसल प्रणाली में परिवर्तन
- अधिक पानी की जरूरत वाली फसल के स्थान पर कम पानी की जरूरत वाली फसल को उगाना
- अदलहनी फसल के स्थान पर दलहनी फसल का चयन
- फसल/फसल प्रणाली का समन्वित कृषि प्रणाली के साथ समायोजन
- कृषि उत्पादन के साथ-साथ उत्पादन का प्रसंस्करण, मूल्य प्रवर्धन करना

हो रही है। धान को छोड़कर कोई दूसरी फसल ऐसी परिस्थिति में नहीं ली जा सकती है। अत: धान आधारित क्षेत्रों में फसल विविधीकरण के कुछ विकल्प निम्न हो सकते हैं:

- उच्च भूमि जहां जलभराव की समस्या नहीं होती है, वहां धान की फसल को किसी लाभकारी दलहन/तिलहन या अन्य फसल से प्रतिस्थापित करना।
- रबी में गेहूं को कृषि जलवायु एवं परिस्थिति के अनुरूप अन्य फसल से प्रतिस्थापित करना।
- फसल सघनीकरण-धान-गेहूं के बाद सिंचित क्षेत्रों में जायद में दलहनी फसलों जैसे मूंग, उड़द, लोबिया आदि

सारणी 2. देश के विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में प्रचलित धान आधारित फसल प्रणाली में विविधीकरण के लिए मूल्यांकन की गई वैकल्पिक प्रणाली

कृषि जलवायु क्षेत्र	स्थान	प्रचलित प्रणाली	वैकल्पिक प्रणाली	उपज में वृद्धि (प्रतिशत)
पश्चिमी हिमालय	धनसौर	धान-गेहूं	धान-आलू-प्याज	230.7
	पंतनगर	धान-गेहूं	धान-आलू-बरबटी	123.3
पूर्वी हिमालय	करीमगंज	धान-आलू	धान-राजमा	42.2
निचली गंगा का मैदान	काकद्वीप	धान-मूंग	धान-भिंडी	106.9
मध्य गंगा का मैदान	पटना	धान-गेहूं	धान-गेहूं-मूंग	59.8
ऊपरी गंगा का मैदान	सैनी	धान-गेहूं	तिल-मटर	97.8
पूर्वी पठार एवं पहाड़	ढेंकनाल	धान-मूंग	धान-टमाटर	116.9
	गोंदिया	धान-गेहूं	धान-गेहूं-लोबिया	76.3
दक्षिणी पठार एवं पहाड़	वारंगल	धान-धान	धान-मक्का	39.9
	बेंगलुरु	धान-रागी	धान-बैंगन	250.7
पूर्वी तटीय मैदान एवं पहाड़	केन्दरपारा	धान-मूंग	धान-करेला	88.9
पश्चिमी तटीय मैदान एवं घाट	थीरुवाला	धान-धान-परती	धान-धान-भिंडी	243.5

स्रोत-गंगवार एवं सिंह, 2011, कुशल वैकल्पिक फसल प्रणाली

सोयाबीन

प्रमुख समस्याएं

मृदा स्वास्थ्य में गिरावट

धान व गेहूं दोनों ही अदलहनी फसलें हैं। इनकी पोषक तत्व मांग भी अधिक है। इस पद्धति के लगातार अपनाने से बहुत सारे प्रमुख एवं गौण पोषक तत्वों की कमी मृदा में हो रही है। साथ ही मृदा में कार्बनिक पदार्थ की कमी एवं मृदा से पोषक तत्वों का निक्षालन होने से उर्वरता में ह्रास हो रहा है। मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में खराबी आ रही है। पलेवा एवं खरीफ में लगातार खेत में पानी के भरे होने के कारण मृदा लवणीयता/क्षारीयता बढ़ रही है। इस प्रकार मृदा का स्वास्थ्य खराब हो रहा है।

उत्पादन लागत में वृद्धि

लगातार एक ही प्रकार की फसल उगाने से विभिन्न आदानों जैसे उर्वरक, पीड़कनाशी आदि की दक्षता में कमी हो रही है। इसके कारण प्रति इकाई उत्पादन के लिए आदानों की आवश्यकता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इस प्रकार उत्पादन लागत में वृद्धि हो रही है।

पर्यावरण प्रदूषण

धान के खेत से जलमग्न दशा में मीथेन गैस निकलती है। यह एक प्रमुख ग्रीन हाउस गैस है। इसका वैश्विक तापमान बढ़ाने में बड़ा योगदान है। साथ ही ऐसी दशा में नाइट्रेट निक्षालित होकर भूजल को प्रदूषित कर रहे हैं। इसके कारण पांच साल से कम उम्र के बच्चों में 'ब्लू बेबी सिंड्रोम' की समस्या हो रही है। गेहूं की बुआई समय पर करने के लिए पंजाब और हरियाणा राज्यों में धान की कटाई के बाद फसल अवशेष को खेत में जला दिया जाता है। इससे काफी मात्रा में वायु प्रदूषण के साथ-साथ मृदा से पोषक तत्वों की हानि होती है एवं बहुत सारे लाभकारी सूक्ष्मजीवों को भी नुकसान होता है।

रोग एवं कीटों के प्रकोप में वृद्धि

धान एवं गेहूं दोनों अदलहनी फसलों को अनुकूल वातावरण देने के लिए लगातार सिंचाई की आवश्यकता होती है। इसके कारण आसपास के पर्यावरण में हमेशा आर्द्रता बनी रहती है। यह रोगों एवं कीटों की वृद्धि, प्रजनन तथा संक्रमण में सहायक है। धान में झुलसा, शीथ ब्लाइट, तना छेदक आदि की लगातार बढ़ती समस्या निरंतर एक ही प्रकार की फसल के उगाने के कारण है।

खरपतवार की विविध प्रजातियां

धान-गेहूं फसल पद्धति में एक ही प्रकार के खरपतवारनाशियों के लगातार उपयोग के कारण कुछ खरपतवारों जैसे गेहूं में आइसोप्रोट्यूरान के प्रति रोधकता विकसित हो गई। इसके अलावा बहुत सारी नई खरपतवार प्रजातियों का प्रादुर्भाव भी इस प्रणाली को अपनाने से दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है।

पारिस्थितिक असंतुलन

निरंतर एक ही प्रकार की फसल प्रणाली से विभिन्न प्रकार के पीड़कों का प्रकोप होता है। इनके नियंत्रण के लिए पीड़कनाशियों के अंधाधुंध प्रयोग से विभिन्न लाभकारी जीवों, जो कि किसान मित्र के नाम से जाने जाते हैं, की हानि होती है। इस प्रकार जैव पारिस्थितिकी में असंतुलन दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है।

अरहर

कपास

का समावेश अथवा गेहूं में दलहनी फसलों का अंतरासस्यन करना।

धान-गेहूं फसल पद्धति में ऋतु के अनुसार फसल प्रतिस्थापन एवं सघनीकरण के लिए विभिन्न विकल्पी फसलें निम्न प्रकार से हैं:

फसल प्रतिस्थापन

धान-(उच्च भूमि में) खाद्यान्न: मक्का, ज्वार, बाजरा

- **दलहन:** अरहर, मूंग, उड़द
- **तिलहन:** सोयाबीन, मूंगफली
- **सब्जियां:** भिंडी, टमाटर, बैंगन, मिर्च
- **चारे वाली फसलें:** लोबिया, सुडान घास, चारे वाली मक्का
- **गेहूं-खाद्यान्न**-जौ, जई, रबी मक्का
- **दलहन:** चना, मटर, खेसारी, मसूर
- **तिलहन:** सरसों, अलसी, कुसुम
- **सब्जियां:** गोभीवर्गीय सब्जियां, गाजर, आलू, प्याज, टमाटर
- **चारे वाली फसलें:** बरसीम, लूसर्न

फसल सघनीकरण

धान-गेहूं के बाद ग्रीष्मकालीन फसलें: खाद्यान्न-ग्रीष्म मक्का

- **दलहन:** मूंग, उड़द, लोबिया
- **सब्जियां:** कद्दूवर्गीय सब्जियां, भिंडी
- **चारे वाली फसलें:** सुडान घास, मक्का, लोबिया

देश के विभिन्न अनुसंधान केन्द्रों पर प्रयोग की गई वैकल्पिक प्रणालियों की दक्षता का मूल्यांकन किसान के खेतों में प्रचलित प्रणाली से किया गया और पाया गया कि वैकल्पिक प्रणाली से प्रचलित प्रणाली की तुलना में 40-400 प्रतिशत तक अधिक उपज प्राप्त हुई।

धान-गेहूं फसल प्रणाली में विविधीकरण अपनाने में आने वाली मुख्य बाधाएं निम्न हैं:

- उन्नत किस्मों के बीजों की कमी
- अनुसंधान के प्रचार-प्रसार में कमी
- कमजोर कृषि आधारित उद्योग
- वर्षा आधारित खेती के 63 प्रतिशत कृषि क्षेत्र वर्षा पर निर्भर हैं।

दीनानाथ घास है
पशुओं के लिए पौष्टिक हरा चारा

सतेन्द्र कुमार[1], राजीव कुमार अग्रवाल[2], सुनील कुमार[3] और **एम.एम. दास[4]**
भाकृअनुप-भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी-284003 (उत्तर प्रदेश)

" भारत की अर्थव्यवस्था में पशुपालन का महत्वपूर्ण योगदान है। देश के ग्रामीण क्षेत्रों में रह रहे 60-70 प्रतिशत ग्रामीणों के लिए पशुपालन आय अर्जन में उनकी आजीविका का सहायक आधार है। पशुओं द्वारा उत्पादित उत्पादों की मांग को ध्यान में रखते हुए पशुओं की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए उत्तम चारा बहुत ही आवश्यक है। पशुओं के संतुलित आहार में खनिज, प्रोटीन, विटामिन व वसा आदि का होना जरूरी है। इन सभी आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति करने के लिए दीनानाथ घास खरीफ मौसम में एक उत्तम विकल्प है। यह एक सीधी, शीघ्र वृद्धि वाली वार्षिक घास है। यह गर्म एवं तर मौसम में अत्यन्त अच्छी उपज देती है। इस घास में अत्यधिक कल्ला उत्पादन क्षमता है। साथ ही साथ पत्तियां लंबे समय तक हरी रहती हैं। इसका चारा मध्यम पोषकता वाला होता है। इस फसल को अफ्रीका और एशिया महाद्वीप के विभिन्न गर्म जलवायु वाले देशों में उगाया जाता है। भारत में इसकी खेती बिहार, बंगाल, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश में सफलतापूर्वक की जा सकती है। "

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दीनानाथ घास बहुत से देशों में उगाई जाती है। इसका जन्म स्थल इथियोपिया है। यह वानस्पतिक रूप से पोऐसी के अंतर्गत वर्गीकृत है। आमतौर पर कई देशों में यह अलग-अलग नाम से जानी जाती है, नाइजीरिया में इसको कश्यवा घास तथा भारत में दीनानाथ के नाम से मुख्यत: जाना जाता है। यह एक वार्षिक चारा फसल है, जो कि कल्लेदार होती है। पकने पर इसके बीज पककर खेत में गिर जाने के कारण अगले खरीफ मौसम में स्वत: ही अच्छे पौधे उत्पन्न हो जाते हैं। इससे यह बहुवर्षीय प्रतीत होती है। इस फसल को मुख्यत: हम परती भूमि एवं जंगलों में आसानी से देख सकते हैं। इस फसल की ऊंचाई 30-150 सें.मी. तक होती है। इसकी पत्तियां 5 से 25 सें.मी. लंबी तथा पत्तियों की चौड़ाई 4 से 15 मि.मी. तक होती है। इस फसल में रोयेंदार 5-15 सें.मी. लंबा बाल निकलता है। इसके पकने पर हमें बीज की प्राप्ति होती है।

भूमि एवं भूमि की तैयारी

आमतौर पर दीनानाथ घास को खराब, कम उपजाऊ एवं परती भूमि पर उगाया जाता है। इसके अच्छे जमाव एवं उत्पादन के लिए दोमट मृदा सर्वोत्तम है। हल्की मध्यम एवं भारी इत्यादि सभी प्रकार की मृदाओं में इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। भूमि की तैयारी के लिए साधारणत:

[1]वरिष्ठ शोध अध्येता; [2,3,4]प्रधान वैज्ञानिक

खाद एवं उर्वरक

दीनानाथ घास के अधिक उत्पादक होने के कारण इसको अधिक पोषकता की आवश्यकता पड़ती है। 8–10 टन अच्छी गोबर की खाद बुआई से लगभग एक माह पूर्व

खेत में डालना चाहिए। रोपाई के समय 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस बीज के बगल में पट्टियों में डालना चाहिए। तत्पश्चात लगभग 45 दिनों की अवस्था पर 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर को अतिरिक्त मात्रा में छिड़कना चाहिए।

उचित बीज के लिए 1–2 जुताइयां पर्याप्त होती हैं।

बुआई का समय

यह एक खरीफ मौसम की फसल है। इसकी बुआई के लिए वर्षा शुरू होने के बाद का समय (जून–जुलाई) उपयुक्त होता है। खेत या भूमि में इसकी एक बार बुआई करने के पश्चात यह 3–4 वर्षों तक सफलतापूर्वक उगती रहती है।

बीज दर एवं बुआई

दीनानाथ घास के बीज अत्यन्त छोटे एवं रोयेंदार खोल से ढके होते हैं। इसको अधिकतम 1.5 सें.मी. की गहराई पर बोना चाहिए। गहराई अधिक होने पर बीज के जमाव पर नकारात्मक प्रभाव होता है। इसकी अंकुरण क्षमता अधिक होती है। इसके लिए अच्छी भुरभुरी खरपतवाररहित भूमि की आवश्यकता होती है। बुआई सीधे खेत में की जा सकती है। इसके लिए लगभग 3–4 कि.ग्रा. बीज (रोयेंदार) की आवश्यकता होती है। इसके खोलरहित बीज भाकृअनुप–भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी में उपलब्ध हैं। इसकी 400 ग्राम. मात्रा 1 हैक्टर क्षेत्र के लिए पर्याप्त होती है।

फसल चक्र

आमतौर पर दीनानाथ घास को अन्य फसलों के साथ मिश्रित करके नहीं बोते हैं। इसे स्टाइलों के साथ मिश्रित करके बोने से चारे की गुणवत्ता में वृद्धि होती है। खेतों में इसकी लोबिया, ग्वार अथवा अरहर के साथ भी बुआई कर सकते हैं। दीनानाथ घास आधारित प्रमुख फसल चक्र निम्न प्रकार से हैं:

फसल की पुष्प अवस्था

सारणी 1. पशुओं को मिलने वाले अन्य पोषक तत्वों की मात्रा

दीनानाथ घास	ग्राम /कि.ग्रा. सूखा चारा						मि.ग्रा./कि.ग्रा. सूखा चारा		
	कैल्शियम	फॉस्फोरस	पोटाश	सोडियम	मैग्नीशियम	मैग्नीज	जिंक	कॉपर	आयरन
हरा चारा	3.6	2.8	19.6	0.8	2.9	63.0	40.0	5.0	305.0
हे	3.6	1.9	18.8	0.1	2.7	76.0	47.0	5.0	364.0

सारणी 2. दीनानाथ घास में पोषकता

दीनानाथ घास	क्रूड प्रोटीन (प्रतिशत)	न्यूट्रल डिटर्जेन्ट फाइबर (प्रतिशत)	एसिड डिटर्जेन्ट फाइबर (प्रतिशत)	एसिड डिटर्जेन्ट लिग्निन (प्रतिशत)	ईथर एक्स्ट्रेक्ट (प्रतिशत)	राख (प्रतिशत)
हरा चारा	6.5	75.8	47.4	7.0	9.5	1.5
हे	4.0	78.8	50.9	7.8	8.6	1.1

सारणी 3. दीनानाथ घास की मुख्य प्रजातियां

प्रजातियां	उपयुक्त क्षेत्र	उत्पादन क्षमता (हरा चारा टन/हैक्टर)
बुन्देल दीनानाथ–1	सम्पूर्ण उत्पादक क्षेत्र	25–30
बुन्देल दीनानाथ–2	सम्पूर्ण उत्पादक क्षेत्र	22–28
पूसा–19	सम्पूर्ण उत्पादक क्षेत्र	28–30
टी. एन. डी. एन.	दक्षिणी क्षेत्र	30–35

दीनानाथ घास + लोबिया–बरसीम, दीनानाथ घास + अरहर, दीनानाथ घास + लोबिया–रिजका।

सिंचाई

घास की बुआई भूमि में पर्याप्त नमी की दशा में करनी चाहिए। खरीफ में वर्षा में लंबा अंतराल होने पर एक सिंचाई की आवश्यकता होती है।

कटाई के लिए फसल तैयार

खरपतवार नियंत्रण

यह एक शीघ्र वृद्धि वाली घास है और 40–45 दिनों के बाद अन्य खरपतवारों की वृद्धि को रोक देती है। इसलिए 25–30 दिनों की अवस्था पर खुरपी या वीडर कम मल्चर की सहायता से एक गुड़ाई कर खरपतवार नियंत्रण किया जाता है।

कटाई

इसकी प्रथम कटाई रोपाई के 70–75 दिनों बाद की जाती है। तदोपरांत अन्य कटाइयां 40–45 दिनों के अंतराल पर करनी चाहिए। समुचित प्रकार से उगाई गई दीनानाथ घास की फसल से 30–35 टन हरा चारा प्राप्त होता है।

मृदा प्रदूषण नियंत्रण में उपयोगी सूक्ष्मजीव

फूलचंद अमूले[1], पावन सिरोठिया[2] और **यू.एस. मिश्रा[3]**

“मृदा या वातावरण में जब किसी धातु या रसायन का सांद्रण सामान्य से अधिक हो जाता है, तो उसे प्रदूषण कहते हैं। औद्योगिक इकाइयों से सबसे अधिक भूमि प्रदूषण फैल रहा है। इसमें रासायनिक उर्वरक व शक्कर कारखाने, कपड़ा बनाने वाली इकाइयों, ग्रेफाइट, ताप बिजलीघरों, सीमेंट कारखानों, साबुन, तेल, धातु निर्माण एवं अन्य कारखानों के द्वारा भारी मात्रा में निकलने वाले रसायनों व गैसों के कारण पशु, जीव, पौधे एवं मृदा आदि पर कुप्रभाव दिखाई पड़ रहा है। भारी धातुओं के कारण मृदा में होने वाले प्रदूषण एवं उसके कारण मानव स्वास्थ्य पर विषाक्त प्रभाव का विवरण दिया जा रहा है।”

असंतुलित रासायनिक उर्वरक एवं अन्य कृषि रसायनों (कीटनाशक, खरपतवारनाशक आदि) का प्रयोग तथा विभिन्न औद्योगिक गतिविधियों के अंतर्गत रसायनों एवं अन्य भारी धातुओं के निर्गमन से मृदा व वातावरण के कारण स्वास्थ्य पर गहरा कुप्रभाव पड़ रहा है, जिसे हम मृदा प्रदूषण कहते हैं।

मृदा प्रदूषण के विपरीत प्रभाव

मानव एवं पशु स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव: कीटनाशक व भारी धातुओं का असर मृदा में लंबे समय तक सक्रिय अवस्था में रहने से इसे पौधे एवं जन्तुओं द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। खाद्य श्रृंखला के माध्यम से ये हानिकारक प्रदूषक मानव शरीर में प्रवेश करते हैं। दूषित मृदा में फसल, सब्जियां, फल आदि उगाने से भारी धातुओं का अवशोषण पौधों के द्वारा सामान्य स्तर से अधिक होता है। इसके माध्यम (खाद्य पदार्थ) से ये मानव एवं पशुओं में पहुंचते हैं। इनके कारण विभिन्न प्रकार के रोग एवं व्याधियां उत्पन्न होती हैं।

पौधों की वृद्धि एवं विकास पर प्रभाव: भारी धातुओं एवं विषाक्त रसायनों का स्तर मृदा में सामान्य से ज्यादा होने पर उसका प्रभाव मृदा में उपस्थित सूक्ष्मजीवों पर पड़ता है। इससे उनकी संख्या में कमी एवं जैव क्रियाओं में बाधा आती है। सूक्ष्मजीवों पर इस प्रकार के प्रभाव से मृदा तत्व खनिजीकरण बाधित होता है। इससे पौधों की वृद्धि एवं विकास पर सीधा प्रभाव पड़ता है। लगातार बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्य आपूर्ति के लिए अंधाधुंध रासायनिक उर्वरक, कृषि रसायन (कीटनाशक, खरपतवारनाशक आदि) का प्रयोग, औद्योगिक गतिविधियों के रसायन (पेट्रोलियम, हाइड्रोकार्बन, नेफ्थलीन, आदि) और अन्य भारी धातुओं के कारण मृदा एवं वातावरण पर गहरा दुष्प्रभाव पड़ रहा है।

मृदा संरचना में परिवर्तन: मृदा में प्रदूषण के कारण अधिकतर मृदा जीवों (केंचुआ आदि) की मृत्यु होने एवं कार्बनिक पदार्थों का समयानुसार अपघटन न होने से मृदा संरचना में भी परिवर्तन होता है।

प्रदूषण का सिलसिला तब आरंभ होता है, जब काम में आने के बाद इन बोरी, बैगों एवं प्लास्टिक वस्तुओं को कचरे के रूप में जहां-तहां फेंक दिया जाता है। इन प्लास्टिकों का जैविक अपघटन बहुत धीरे या न होने के कारण प्लास्टिक जल्दी सड़ता नहीं है और पर्यावरण के लिए खतरा बन जाता है। पॉलीथीन पेट्रो-केमिकल का उत्पाद है, जिसमें हानिकारक रसायनों का उपयोग होता है।

पॉलीथीन कचरा जलाने से कार्बन डाईआक्साइड, कार्बन मोनोआक्साइड एवं डाईऑक्सीन्स जैसी विषैली गैसें उत्सर्जित होती हैं। इससे सांस, त्वचा आदि के रोग होने

[1]मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन शास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश); [2,3]मृदा विज्ञान, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन विभाग, एमजीसीजीवी, चित्रकूट, सतना (मध्य प्रदेश)

की आशंका बढ़ जाती है। पशु-पक्षियों द्वारा कीटनाशकयुक्त विषाक्त भोजन एवं पॉलीथीन आदि खाने के कारण प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में इनकी मृत्यु हो रही है।

मृदाजीवों द्वारा मृदा विषाक्त पदार्थों का अपघटन

मृदा सूक्ष्मजीव मृदा में एक अपमार्जिक के रूप में कार्य करते हैं। ये दूषित मृदा में पाए गए विभिन्न रासायनिक विषाक्त पदार्थों का जैव अपघटन कर मृदा में उपस्थित प्रदूषण स्तर को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनमें बैक्टीरिया एवं कवक प्रमुख हैं। ये सूक्ष्मजीव शारीरिक संरचना (निर्माण) एवं ऊर्जा के लिए मृदा में उपस्थित विभिन्न प्रकार के विषाक्त रासायनिक यौगिकों का एंजाइमों की मदद से जैव अपघटन कर उसमें उपस्थित कार्बन व रासायनिक आयनों का उपयोग करते हैं। अवशेष मात्रा को सरल यौगिकों में बदल देते हैं, जिससे मृदा में कुछ मात्रा में पादप पोषक तत्वों की वृद्धि होती है।

अजोला

अजोला तेजी से बढ़ने वाला एक जलीय फर्न है। यह पानी की सतह पर तैरता रहता है। धान की फसल में हरी खाद के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। इससे भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ती है। इससे उत्पादन में आशातीत वृद्धि होती है। अजोला मुख्य रूप से खरपतवार नियंत्रण, बायोगैस के लिए कार्बनिक पदार्थ का स्रोत व दूषित जल उपचार के लिए प्रयोग किया जाता है। अजोला अनुकूल वातावरण होने पर 4-5 दिनों में दोगुना बायोमास उत्पादन करता है। साथ ही साथ पानी में घुलनशील खनिज लवणों, भारी धातुओं एवं अन्य जल मृदा प्रदूषकों का अवशोषण कर उनका स्तर काफी कम करता है। प्रदूषक अवशोषित अजोला को सुखाकर उससे कार्बनिक खाद, कम्पोस्ट व बायोगैस उत्पादन के लिए प्रयोग कर प्रदूषकों का जैव अपघटन आसानी से किया जा सकता है। अजोला की कुछ प्रमुख प्रजातियां जैसे: *अजोला पिनाटा, अजोला कारोलिनियाना* आदि दूषित जल व मृदा उपचार के लिए उत्तम हैं।

पादप प्लवक

पादप प्लवक, एक कोशिकीय जलीय सूक्ष्मजीव होते हैं, जो कि समुद्र तटीय क्षेत्रों, तालाबों व इकट्ठा हुए दूषित पानी में पाए जाते हैं। पादप प्लवक को मुख्यत: दो वर्गों में बांटा गया है: (अ) शैवाल व (ब) साइनोबैक्टीरिया। ये पादप प्लवक वायुमंडल से कार्बन डाईआक्साइड गैस, पानी में घुलनशील पोषक तत्वों व सूर्य की रोशनी की उपस्थिति में अकार्बनिक यौगिकों को कार्बनिक अवयवों में बदलते हैं। पादप प्लवक मुख्य रूप से नाइट्रेट, फॉस्फेट, आयरन सल्फेट व सेल्सिलिक एसिड का अवशोषण करते हैं। इससे दूषित जल में

मृदा प्रदूषक के प्रमुख कारण

औद्योगिक क्रियाविधि

लगभग एक शताब्दी से भौतिक वस्तुओं के निर्माण के लिए मृदा से धातुओं, खनिजों आदि का खनन तेजी से हो रहा है। इससे मृदा में प्राकृतिक संपदाओं का संतुलन तेजी से बिगड़ रहा है एवं औद्योगिक अपशिष्टों का मृदा, जल एवं वायुमंडल पर विपरीत प्रभाव पड़ा है।

कृषि क्रियाएं

कृषि में नई तकनीकी के साथ-साथ रासायनिक उर्वरकों एवं कृषि रसायनों का प्रयोग तेजी से बढ़ा है। इसके कारण मृदा में इनका संग्रह होता जा रहा है। इनके प्रभाव से मृदा सूक्ष्मजीवों और मृदा जैव क्रियाओं आदि में ह्रास होता है। इससे मृदा में विषाक्त तत्वों एवं धातुओं की विषाक्तता बढ़ जाती है। मृदा की भौतिक संरचना में कमी के साथ-साथ मृदा उर्वरता भी घटती जा रही है।

अपशिष्ट व्यवस्था

दैनिक दिनचर्या में प्रयोग आने वाली वस्तुओं के अपशिष्ट (प्लास्टिक, पॉलीथीन, रसोई कचरा, शहरी अपशिष्ट) आदि का सही तरीके से निबटान व्यवस्था न होने से तथा खुले वातावरण जैसे खेत, नाले, पार्क, नदियों आदि में फेंकने से मृदा प्रदूषण में निरंतर बढ़ोतरी हो रही है।

अम्ल वर्षा

वायु प्रदूषण का अम्ल वर्षा का एक मुख्य कारक है। यह विभिन्न उद्योगों से निकले सल्फरयुक्त धुएं आदि के वायुमंडल में इकट्ठा होने से होती है। अम्ल वर्षा में उपस्थित तत्व मृदा तत्वों की संरचना को परिवर्तित कर देते हैं। इसका मृदा स्वास्थ्य एवं पौधों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

प्लास्टिक प्रदूषण

प्लास्टिक एक विदेशी दिमाग की उपज है, जिसे सन् 1862 में अलेक्जेंडर पार्कीस ने लंदन में एक महान अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी में प्रदर्शित किया। इसके द्वारा बनी हुई वस्तुएं बहुत आकर्षक, टिकाऊ और कभी न सड़ने-गलने वाली होती हैं। यह बात बिल्कुल ठीक है, लेकिन यही एक कारण आज हमारे जन-जीवन व वातावरण के लिए कितनी घातक हो चुकी हैं ये किसी ने नहीं सोचा।

सारणी 1. मृदा प्रदूषण के प्रदूषक, स्रोत एवं उनका मानव स्वास्थ्य पर दुष्परिणाम

मुख्य मृदा प्रदूषक	स्रोत	मानव स्वास्थ्य पर विषाक्त प्रभाव
1. सीसा	पेन्ट, खाद्यान्न, वाहन धुआं कृषि रसायन आदि	तंत्रिका तंत्र, याददाश्त एवं सामान्य विकास पर प्रभाव
2. मरकरी (पारा)	खाद्यान्न, प्रसंस्करण, पौधों सब्जियों एवं अन्य खाद्योंनों के संग्रहण एवं चिकित्सा संबंधी स्रोत	• जलन, दर्द, मस्तिष्क एवं गुर्दे पर कुप्रभाव • उच्च रक्तचाप • बाल, दांत, नाखून,आदि का झड़ना
3. आर्सेनिक	कोयला खदानों, विद्युत उद्योग, कृषि रसायन आदि	गुर्दे, पित्ताशय, जीभ, आदि संबंधित कैंसर, पाचन में कमी, डायरिया, आदि
4. अन्य धातुएं (मैंग्नीज, कैडमियम, कॉपर, जिंक, निकिल, आदि)	खाद्यान्न, रासायनिक उर्वरक, औद्योगिक अपशिष्ट आदि	विभिन्न धातुओं का अलग-अलग प्रभाव
5. पॉलीरोमेटिक हाइड्रोकार्बन	कोयला खदानों से, वाहनों के धुएं, पौधे एवं सब्जियों में संग्रहण, फसल अपशिष्ट, लकड़ी आदि के जलाने से	• त्वचा पर प्रभाव • आंखों में जलन • किडनी एवं लीवर पर कुप्रभाव • त्वचा, जीभ, पित्ताशय आदि में कैंसर • त्वचा संबंधित व्याधियां आदि

इन प्रदूषकों का स्तर काफी संतुलित बना रहता है।

नेमेटोड

नेमेटोड एक प्रमुख मृदा जीव है, जो पादप, बैक्टीरिया व कवक आदि खाद्य स्रोतों पर निर्भर रहता है। ये जीव मृदा में सूक्ष्मजीवों के संतुलन को बनाए रखने में सहायक होते हैं। साथ ही साथ खाद्य श्रृंखला में अहम भूमिका निभाते हैं।

माइकोराइजा

माइकोराइजा एक कवक है, जिसकी अलग-अलग तीन प्रजातियां पाई जाती हैं। माइकोराइजा कवक पौधों की जड़ तंत्र में कॉलोनी बनाता है। सहजीवी सहचर्य को विकसित करता है। यह तंतुओं का एक जाल तंत्र बनाती है। यह मृदा में उपस्थित भारी धातुओं की विषाक्तता से रक्षा करती है।

केंचुआ

केंचुआ, मानव इंजीनियरों की तरह अपने आसपास के वातावरण की संरचना बदलता रहता है। ऊर्ध्वाधर एवं क्षैतिज बिल बनाना, मृदा को ऊपर नीचे उलटफेर आदि करना, जिसकी वजह से इसे पारिस्थितिकीय तंत्र का इंजीनियर कहा गया है। केंचुए का बिल मृदा में ऑक्सीजन व पानी के संचार को बढ़ाने के साथ अप्रत्यक्ष रूप से जैव अपघटन अभिक्रियाओं में सहयोग करता है।

केंचुआ, मृदा कार्बनिक पदार्थों को ग्रहण कर उसे मल के रूप में त्यागता है। यह मृदा सूक्ष्मजीवों जैसे कवक, बैक्टीरिया आदि का मुख्य कार्बन एवं ऊर्जा स्रोत हैं। इस प्रकार के खाद्य पदार्थों की लगातार आपूर्ति से मृदा में सूक्ष्मजीवों की जैव विविधता में आशातीत वृद्धि होती है। इससे भारी धातुओं, प्लास्टिक, मृदा प्रदूषक आदि अवांछित पदार्थों का जैव अपघटन सुगमतापूर्वक होता है।

मृदा कवक विभिन्न जैविक अभिक्रियाओं के माध्यम से अनेक प्रकार के एंजाइमों (पॉलीफीनॉल, ऑक्सीडोज आदि) का मृदा में स्राव करते हैं। यह विभिन्न प्रकार के हाईड्रोकार्बन (पाइरेन, बेजोअल्फा, पाइरेन, आदि) को जैव अपघटन कर इनके स्तर को कम करता है। कवक की कुछ प्रजातियां जैसे- *जाइगोमाइसिटीज व अरबसकुलर माइकोराइजा* आदि ऑक्सीडेटिव एंजाइम का स्राव कर जैव अपघटन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। लिग्नोसेलुलोज के अपघटन में एगोरिक्स वाइस्पोरस कवक एक असरदार अपघटनकारी पाया गया है। एस्परजिलस ग्लेयूक्स कवक पॉलीमरयुक्त पॉलीथीन का अपघटन कर मृदा में प्लास्टिक प्रदूषण कुछ हद तक कम करता है।

मृदा में सूक्ष्मजीवों का प्रबंधन

मृदा जीवों के कार्यों को देखते हुए यह पता चलता है कि हमारे जीवन, वातावरण, पारिस्थितिकी तंत्र व पादप आदि के स्वस्थ जीवन में इनकी कितनी अहम भूमिका है। इनके माध्यम से मृदा, जल व वायु प्रदूषण का नियंत्रण, भारी धातुओं का जैव अपघटन, मृदा पोषक तत्वों का खनिजीकरण, पुनर्चक्रण आदि नियंत्रित किए जाते हैं। अतः मृदा में

मृदा कवक

कवक एक बहुकोशिकीय, परजीवी मृदा सूक्ष्मजीव है। यह अपना भोजन मृदा में उपस्थित सड़े-गले कार्बनिक पदार्थों, पादप अवशेषों आदि से प्राप्त करता है। ये मृदा की जैविक अभिक्रियाओं जैसे-पोषक तत्वों का खनिजीकरण, पुनर्चक्रण, कार्बनिक पदार्थों के अपघटन व मृदा प्रदूषकों के जैव अपघटन में अहम भूमिका निभाते हैं। मृदा कवक का मृदा कार्बन में वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण योगदान रहता है। जिन मृदाओं में पोषक तत्वों की उपलब्धता सुलभ रहती है, वहां कवक की संख्या प्रचुर मात्रा में पाई जाता है।

सूखी लकड़ी पर उगे कवक

कवक मृदा में उपस्थित भारी धातुओं जैसे कैडमियम, तांबा, पारा, सीसा और जस्ता आदि का अवशोषण कर मृदा में उनके विषाक्त स्तर को कम करते हैं। शोधकर्ताओं ने अध्ययन में पाया कि *राइजोपस एरहीजस*, यूरेनियम एवं सोडियम के जैव उपचार में काफी कारगर मिला। लिग्निन का पूर्णरूप से अपघटन केवल सफेद मृदा कवक से ही संभव है।

कीटनाशकों का उपयोग कम करें

कीटनाशकों, फफूंदीनाशक आदि के मृदा प्रयोग से पादप व सूक्ष्मजीवों पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। कृषि रसायनों में उपस्थित भारी धातुएं, पादप व सूक्ष्मजीवों के उपापचयी क्रियाओं को प्रभावित करती हैं। इससे उनकी संख्या व क्रियाशीलता में निरंतर कमी होती है। अतः जहां तक संभव हो कृषि रसायनों का प्रयोग कम से कम करना चाहिए।

प्रदूषकों का जैविक परिवर्तन

मृदा प्रदूषकों का स्तर कम करने में जैविक परिवर्तन की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। यह पादप, जीवाणु, कवक आदि के द्वारा विभिन्न प्रकार के एंजाइम द्वारा चयापचय क्रियाओं के माध्यम से सम्पन्न होता है। कीटनाशकों के जैविक परिवर्तन के अंतर्गत निम्नलिखित क्रियाएं शामिल हैं:

- **डिटॉक्सीफिकेशन:** इसमें विषैले रसायनों का गैर विषैले यौगिक में रूपांतरण कर दिया जाता है। यह पूर्णरूप से सुरक्षित नहीं है।
- **अपघटन:** विषम जटिल रसायनों को सरल यौगिकों में परिवर्तन करके उसका खनिजीकरण कर सरल तत्वों में परिवर्तित कर दिया जाता है।
- **संयुग्मन:** इस विधि में विषाक्त पदार्थों/रसायनों को अमीनो अम्ल व कार्बनिक अम्ल के साथ जोड़कर उसे और अधिक जटिल बनाकर स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है। यह पौधों व जन्तुओं के लिए अनुपलब्ध अवस्था में रहता है।

जैसे-एक प्रकार का अमीनो अम्ल जीवाणु कोशिकाओं से संश्लेषित होकर मृदा में प्रयोग किए गए कीटनाशक सोडियम डाइमिथाईल डाइथाईकार्बोनेट के साथ क्रिया कर उसे जटिल यौगिक में परिवर्तित कर वातावरण में स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है जो कि लंबे समय तक निष्क्रिय अवस्था में बना रहता है।

सूक्ष्मजीवों की जैव विविधता बनाए रखने के लिए निम्नलिखित प्रक्षेत्र प्रबंधन अति आवश्यक है जैसे:

कार्बनिक पदार्थों की आपूर्ति

- फसल अवशेष प्रबंधन
- कार्बनिक खादों का अधिकतम उपयोग
- आच्छादित फसलें

फसल विविधता

- विभिन्न प्रकार की फसलों की बुआई
- फसलों की हेर-फेर कर बुआई

मृदा सूक्ष्मजीव संरक्षण

- कम से कम जुताई
- खाली खेत न छोड़ना
- कीटनाशकों का कम से कम प्रयोग
- पानी निकास में सुधार
- मृदा ताप/वायुवीय का उचित प्रबंधन

फसल अवशेष प्रबंधन

फसल अवशेष प्रबंधन एक सुलभ व मूल्यवान मृदा कार्बन स्रोत है। फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन कर (कम्पोस्ट आदि) मृदा में कार्बन की मात्रा में उचित वृद्धि की जा सकती है। इससे विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं एवं सूक्ष्मजीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है।

कार्बनिक खाद

विभिन्न प्रकार की कार्बनिक खादों (कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, नाडेप खाद, हरी खाद, कार्बनिक खादं एवं जैव उर्वरक) के उपयोग सें मृदा कार्बन और मृदा के जैविक स्वास्थ्य में वृद्धि होती है।

आच्छादित फसल

दलहनी आच्छादित फसल उगाने से मृदा जीवाणु की संख्या में वृद्धि होती है। साथ ही साथ मृदा पोषक तत्वों में सुधार होता है। इससे संश्लेषित रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग

सूखी लकड़ी पर उगे कवक

में कमी की जा सकती है। साथ ही साथ ये फसलें मृदा कार्बनिक पदार्थों में वृद्धि करके मृदा की जलधारण क्षमता बढ़ाती है।

विभिन्न प्रकार की फसलों की बुआई

अलग-अलग फसलों की जड़ों से विभिन्न प्रकार के कार्बनिक अम्लों व हार्मोन्स आदि का स्राव होता है। यह सूक्ष्मजीवों के कार्बन व ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। एक ही खेत में दो से अधिक प्रकार की फसलें व सब्जियां उगाने से जैव विविधता अच्छी रहती है। इससे सूक्ष्मजीवाणुओं के संवर्धन में सहायता मिलती है।

फसलों की हेर-फेर कर बुआई

एक ही फसल को बार-बार पर उगाने से उस मृदा में फसल जड़ संबंधित कुछ विशेष हानिकारक जीवों की संख्या में वृद्धि होने लगती है। अनाज वाली फसलों के साथ या हेर-फेर कर दलहनी व तिलहनी फसलें लेनी चाहिए जैसे गेहूं+चना/दलहनी या सोयाबीन के बाद गेहूं की बुआई करें। इस प्रकार हेर-फेर कर फसल सब्जी व फलों के उगाने से मृदा सूक्ष्मजीवों में विविधता पाई जाती है।

मृदा जीवन संरचना

मनुष्य की भांति मृदा जीव की कार्य क्षमता बढ़ाने के लिए उचित आवास की आवश्यकता रहती है। इसके लिए मृदा में उचित नमी, वायु संचार, मृदा पी-एच पोषक तत्वों की उपलब्धता, कार्बन व ऊर्जा स्रोत आदि का समुचित प्रबंधन होना अति आवश्यक है। मृदा परीक्षण एवं उचित मृदा प्रबंधन के माध्यम से मृदा जीव संरक्षण संभव है।

कम से कम खेत की जुताई

अधिक जुताई करने से मृदा कार्बन का ह्रास होता है। यह बैक्टीरिया एवं अन्य सूक्ष्मजीवाणुओं की संख्या में बढ़ोतरी के लिए आवश्यक है। इस प्रकार कार्बन की कमी से मृदा में सूक्ष्मजीवाणुओं की संख्या में कमी होती है। अत: उचित कार्बन प्रबंधन के लिए कम से कम जुताई करनी चाहिए।

खाली खेत न छोड़ें

लंबे समय तक खेत को खाली छोड़ने से मृदा में पोषक तत्वों के साथ-साथ, एंजाइम, कार्बनिक पदार्थों आदि की मात्रा में लगातार गिरावट होती है। इससे मृदा सूक्ष्मजीवों की संख्या व उनकी क्रियाशीलता में निरंतर कमी होती जाती है।

जल निकास का समुचित प्रबंध

मृदा प्रबंधन के अंतर्गत समुचित जल निकास का प्रबंध होना अति आवश्यक है। इससे मृदा में वायुवीय प्रवाह बना रहता है। मृदा सूक्ष्मजीवाणुओं को उचित वातावरण मिलता है व उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

संतुलित रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग

रासायनिक उर्वरक के संतुलित उपयोग से सूक्ष्मजीवों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति होने के साथ-साथ मृदा में कार्बन:नाइट्रोजन अनुपात संतुलित रहता है। रासायनिक उर्वरकों के अलावा आवश्यकतानुसार भूमि सुधार कारकों (जिप्सम, चूना, रॉक फॉस्फेट आदि) का प्रयोग लाभकारी होता है।

मृदा/बीज टीकाकरण

उचित एवं चयनित जैव उर्वरकों से मृदा एवं बीजोपचार करने से मृदा में सूक्ष्मजीवों की आशातीत वृद्धि होती है। उनके द्वारा विभिन्न जैविक क्रियाओं (खनिजीकरण, नाइट्रोजन स्थिरीकरण, फॉस्फोरस घुलनशीलता, भारी तत्वों का जैव अपघटन आदि) के माध्यम से मृदा में न केवल पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है बल्कि रासायनिक उर्वरकों के उपयोग में भी कमी की जा सकती है। जैव उर्वरकों के प्रयोग से संश्लेषित रासायनिक उर्वरकों की एक बड़ी मात्रा की बचत होती है। इससे उत्पादन के लिए अतिरिक्त खर्च के साथ-साथ औद्योगिक कचरे को भी कम किया जा सकता है। ■

प्लास्टिक का जैव अपघटन

वातावरण में प्लास्टिक एक टिकाऊ वस्तु है। इसका विघटन जैविक व अजैविक कारकों के प्रभाव से एक लंबी अवधि के बाद संभव होता है। अत: प्लास्टिक के संघटक अवयवों में परिवर्तन कर उसे सरलता व जल्दी से अपघटित किया जा सकता है। कुछ जैविक अपघटन के उदाहरण निम्नलिखित हैं:

प्लास्टिक जैविक अपघटन एक वातावरणीय मित्रवत सोच है। जीवाणुओं की कुछ प्रजातियां पॉलीथीन में उपस्थित हल्के अणुभार वाले यौगिकों को कुछ विशेष एंजाइमों की मदद से अपघटित कर उसे सरल यौगिकों में परिवर्तित कर देती हैं। उससे मुक्त कार्बन का उपयोग अपने कोशिका निर्माण में करती हैं। इस प्रकार बैक्टीरिया की कुछ प्रजातियां जैसे *स्यूडोमोनास, एल्कालिजीनस, बैसिलस* आदि का कल्चर तैयार कर प्लास्टिक जैव अपघटन के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।

अरंडी के विविध उपयोग

प्रद्युम्न यादव, के.एस.वी.पी. चंद्रिका, आई.वाई.एल.एन. मूर्ति और **ए. विष्णुवर्धन रेड्डी**
भाकृअनुप–भारतीय तिलहन अनुसंधान संस्थान, राजेंद्र नगर, हैदराबाद (आंध्र प्रदेश)

"अरंडी के किसानों में इसकी लोकप्रियता का कारण अन्य संकरों की तुलना में 25–30 प्रतिशत अधिक उपज और आय है। दक्षिण भारतीय वर्षा वाले क्षेत्रों में, अरंडी किसानों के बीच बहुत लोकप्रिय है। अरंडी के बीज का प्रमुख उत्पादक होने के बावजूद हमारे देश में इसकी घरेलू खपत करीब 3 लाख टन है। यह कुल वैश्विक खपत का केवल 10 प्रतिशत है। वैश्विक अरंडी उत्पादन में केवल 7 प्रतिशत हिस्सेदारी के साथ ब्राजील संभवतः मूल्यवर्धित अरंडी उत्पादों में दुनिया का सबसे बड़ा निर्यातक देश है।"

प्रमुख अरंडी उत्पादक देश भारत, चीन और ब्राजील हैं। देश में मुख्य रूप से गुजरात, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, ओडिशा, महाराष्ट्र और कर्नाटक राज्यों में लगभग 10–11 लाख हैक्टर क्षेत्र में अरंडी की खेती की जाती है। 2000 कि.ग्रा./हैक्टर से अधिक की औसत पैदावार के साथ अकेला गुजरात कुल क्षेत्रफल का 65 प्रतिशत और उत्पादन में 80 प्रतिशत से अधिक का योगदान देता है। वर्ष 2001–02 की तुलना में 2015–16 में क्षेत्रफल में 1.5 गुना, उत्पादन में 2.5 गुना और उत्पादकता में 1.75 गुना की कुल बढ़ोतरी देश में हुई है। इस अवधि के दौरान गुजरात राज्य के क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता में क्रमशः 2.21, 2.94 और 1.33 गुना वृद्धि हुई है। गुजरात और राजस्थान में 80 प्रतिशत से अधिक सिंचाई वाले अरंडी क्षेत्रों में जीसीएच–7 उगाया जाता है। यह संकर 3000–3500 कि.ग्रा./हैक्टर की पैदावार क्षमता के साथ संकरित कीटों के लिए सहिष्णु और विल्ट रोग का प्रतिरोधी है।

अरंडी के उपयोग

अरंडी के पौधे, बीज और तेल के कई उपयोग हैं। व्यापार के लिए मुख्य रूप से इसकी खेती की जाती है, क्योंकि यह खाने लायक नहीं होता है।

जड़

पारंपरिक रूप से एलेगिक एसिड (गैलन) की उपस्थिति के कारण अरंडी की जड़ को औषधीय महत्व का माना जाता है। पूर्वी अफ्रीका में गिनी कीड़ा अथवा ब्रॅकनक्यूल्स मेडिनेंसिस से पीड़ित व्यक्ति को इसकी कुटी हुई जड़ पिलाते हैं। लगातार उपयोग करने से यह कीड़े मारने में सफल पाई गई है। जड़ की छाल एक शक्तिशाली रेचक है।

डंठल

अरंडी की औसत डंठल पैदावार लगभग 10 टन/हैक्टर तक है। इसे ग्रामीण क्षेत्रों में आग जलाने की लकड़ी के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। डंठल, अरंडी का मुख्य लिग्नोसेल्लुलोजिक अवशेष है। यह पार्टिकल बोर्ड बनाने में लकड़ी के लिए एक पूरक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

खली

इसके बीज में लगभग 48–50 प्रतिशत तेल होता है। अरंडी तेल निष्कर्षण के दौरान 50 प्रतिशत अरंडी खली का उत्पादन होता है। इसमें लगभग 30–40 प्रतिशत प्रोटीन होता हैं। यह विषाक्त यौगिकों जैसे रिसिन, एलर्जीन तथा रीसीनाइन की मौजूदगी के कारण भोजन या चारे के लिए उपयुक्त नहीं है। अरंडी प्रोटीन में आदर्श अमीनो अम्ल जैसे सिस्टीन, मेथीयोनीन और आइसोल्युसीन शामिल हैं।

यह नाइट्रोजन (4.5-5.5 प्रतिशत), फॉस्फोरस (2.5 प्रतिशत) तथा पोटाश (1.5 प्रतिशत) का समृद्ध स्रोत है। इन्हीं पोषक तत्वों, विशेष रूप से एन.पी.के. के कारण यह एक उत्कृष्ट जैव उर्वरक बनाता है। यह मुख्य रूप से खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। अरंडी खली से प्राप्त प्रोटीन आइसोलेट्स, सर्फेक्टेट्स, रेशों, प्लास्टिक और दीवार डिस्टेंपर के निर्माण में उपयोगी हैं।

अरंडी तेल

अरंडी के संजात (डेरिवेटिव) विभिन्न अनुप्रयोगों में पेट्रोकेमिकल्स की जगह इस्तेमाल होते हैं। जिस कच्चे माल से ये डेरिवेटिव (सारणी-1) बनते हैं वो अक्षय और कृषि आधारित हैं। इस प्रकार ये पृथ्वी के बहुमूल्य संसाधनों को कम नहीं करते हैं। केवल बहुत ही सरल उत्पादों जैसे हाइड्रोजनेटेड अरंडी तेल (एचसीओ), 12-हाईड्रोक्सी स्टीयरिक एसिड (एचएएस), मिथाइल 12 एचएसए, डिहाइड्रेटेड अरंडी ऑयल (डीसीओ), डीसीओ वसीय अम्ल भारत में उत्पादित किए जा रहे हैं और बाकी तेलों का निर्यात किया जा रहा है।

अरंडी के कुछ संजात

सी-11 कट

यह पीए-11, सी-11 अम्ल से बनाया जाता है, जो कि अरंडी तेल या उसके मिथाइल एस्टर के पायरोलिसिस द्वारा प्राप्त किया जाता है। पीए-11 की कीमत अरंडी तेल से लगभग 5 गुना ज्यादा है। प्रकृति में सी-11 एसिड की थोड़ी मात्रा पसीने और आंसू में भी होती है। सी-11 अम्ल (अंडुसेलेनेनिक एसिड) के संजात मुख्यत: उनके कवकरोधी (एंटीफंगल) गुणों के लिए उपयोग किए जाते हैं। इसका उपयोग साबुन, शैंपू, कवकरोधी पाउडर और अन्य स्वच्छता उत्पादों के उत्पादन में किया जाता है।

सी-7 एल्डेहाइड (एन-हेप्टालिहाइड)

सी-7 एल्डीहाइड में जैसमीन से संबंधित सुगंध होती है। यह सुगंध कई धोने के पाउडर, साबुन, कैंडीज और अन्य जैसमीन के सुगंधित उत्पादों में पाई जाती है।

सी-7 अम्ल (एन-हेप्टोनोइक एसिड)

- विमान जेट इंजन के लिए स्नेहक।
- परिवेश के तापमान में परिवर्तन के कारण कार हवारोधी शीशे के विस्तरण को रोकता है।
- स्वाद और सुगंध, प्लास्टिसाइजर्स।
- खरपतवारनाशी के गुणों में सुधार।

सीबैसिक अम्ल

सीबैसिक को पीए-6, 10, कम और उच्च तापमान प्लास्टिसाइजर, जंगरोधी, उड्डयन स्नेहक, हल्के स्टेबलाइजर, पॉलीयुरेथेर्न, बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक्स जैसे विभिन्न मूल्यवर्धित उत्पादों में परिवर्तित किया जाता है। सीबैसिक अम्ल के उत्पादन के दौरान 2-ऑक्टेनॉल सह-उत्पाद बनता है। यह जैव-प्लास्टिजर्स, सिंथेटिक स्नेहक इत्यादि बनाने के लिए पेट्रोलियम द्वारा व्युत्पन्न ऑक्टेनॉल का स्थान ले सकता है।

अरंडी के पत्तों की उपयोगिता

'एरिकल्चर' शब्द की व्युत्पत्ति 'एरि' से हुई है, जिसका अर्थ है अरंडी। यह रेशम के कीट के लिए सबसे महत्वपूर्ण खाद्य पौधा है। 75 कि.ग्रा. पत्तियों को एरि रेशम कीट को खिलाने पर एक कि.ग्रा. रेशम का उत्पादन होता है। एक हैक्टर में 4500 कि.ग्रा. पत्ते प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए रेशम कीट के माध्यम से 600 कि.ग्रा. रेशम का उत्पादन किया जा सकता है। अरंडी के बीजों की पैदावार का त्याग किए बिना 30 प्रतिशत पत्तियों को तोड़कर उन्हें इस उद्देश्य के लिए उपयोग किया जा सकता है। इससे किसानों को लाभ हो सकता है। असोम और अन्य उत्तर-पूर्वी राज्यों में प्राचीनकाल से ही एरिकल्चर की प्रथा चल रही है। बिहार, पश्चिम बंगाल और ओडिशा में सीमित मात्रा में एरि रेशम की खेती की जाती है। यह बड़ी संख्या में लोगों को विशेष रूप से आदिवासी महिलाओं के लिए कृषि उत्पादक रोजगार प्रदान करता है। अरंडी के सूखे पत्तों का रेशम कीट पालन में कृत्रिम भोजन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। यह कम पसंद किए जाने वाले एरि-रेशम कीट के प्यूपा से निकाले जाने वाला तेल अल्फा लिनोलीनिक एसिड (एएलए) का एक प्रचुर और सुलभ स्रोत प्रदान करता है।

एल्कालोइड रीसिनिन की उपस्थिति के कारण पत्तों के पाउडर में उच्च कीटनाशक गुण होते हैं। इसलिए इसका मच्छरों, एफिड, और सफेद मक्खी विकर्षक के रूप में उपयोग किया जाता है। पत्तियों को घावों, सूजन और फोड़े पर लेप के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। बच्चों में पेट फूलना कम करने के लिए तेल के साथ लेपित पत्तियां पेट पर लगाई जाती हैं। अरंडी के पत्ते और जड़ तेल के साथ जड़ पेस्ट बना कर तथा थोड़ा गर्म करके बाहरी रूप से लगाने से माइग्रेन, पीठ दर्द, कटि-स्नायु दर्द और गठिया दर्द में राहत देने के लिए उपयोग किया जाता है।

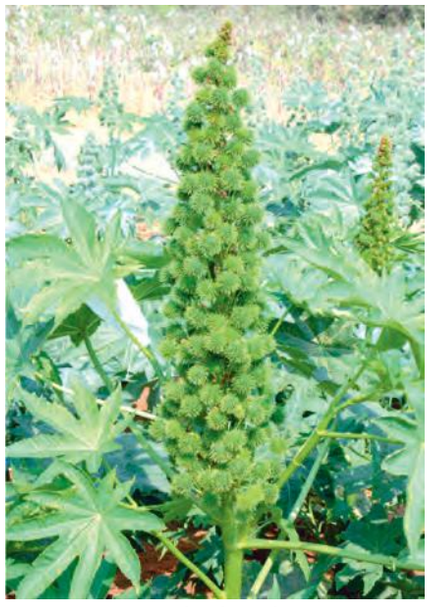

अरंडी की बाली

निर्जलीकृत अरंडी तेल (डीसीओ)

अरंडी तेल का निर्जलीकरण अक्रिय वायुमंडल या वैक्यूम में उत्प्रेरक (सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल, सक्रिय मिट्टी) की उपस्थिति में लगभग 25^0 सेल्सियस पर किया जाता है। निर्जलीकरण की इस प्रक्रिया के तहत, हाइड्रॉक्सिल ग्रुप तथा रिसीनोलिक एसिड हिस्से के सी-11 या सी-13 से हाइड्रोजन परमाणु को पानी के अणु के रूप में हटा दिया जाता है। यह दो अम्लों का मिश्रण पैदा करता है। प्रत्येक में दो-दो बंद होते हैं, लेकिन एक मामले में वे संयुग्मित हैं। यह एक कठिन फिल्म बनाने के लिए तेजी से सूखता है। इसमें उत्कृष्ट जल प्रतिरोध, रंग प्रतिधारण, आसंजन और चमक होती है। निर्जलीकृत अरंडी तेल एक अद्वितीय सुखाने वाला तेल है। सूखी पेंट फिल्म को लचीलापन, चमक, कठोरता, आसंजन, रासायनिक और पानी प्रतिरोध गुण प्रदान करता है।

हाइड्रोजनीकृत अरंडी तेल (एचसीओ)

यह निकल उत्प्रेरक की उपस्थिति में अरंडी के तेल से हाइड्रोजन को जोड़कर तैयार किया जाता है। इस तेल में हाइड्रोजन गैस को बुदबुदाते हुए किया जाता है। इसके दौरान राइसिनोलिक अम्ल पूरी तरह से संतृप्त हो जाता है। एक चिपचिपा मोमी 61^0-69^0 सेल्सियस पर पिघलने वाला पदार्थ बनता है। हाइड्रोजनीकृत अरंडी तेल के रूप में यह तेल का सबसे ज्यादा उपयोग होता है। पानी तथा कार्बनिक सॉल्वेंट्स में एचसीओ की अघुलनशीलता इसे स्नेहक बाजारों के लिए मूल्यवान

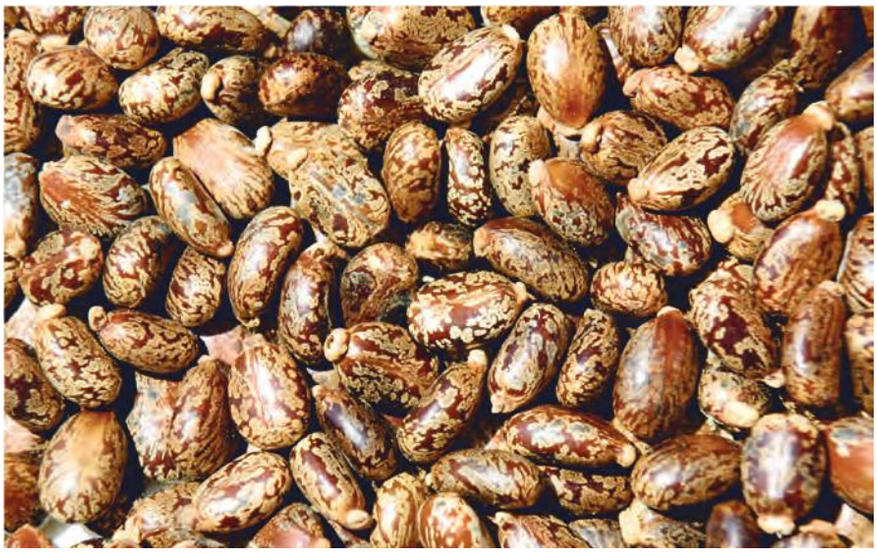

अरंडी बीज

सारणी 1. अरंडी तेल संजात

संजात (डेरिवेटिव)	उपयोग
जनरेशन-1 संजात (डेरिवेटिव्स)	
सल्फोनेटेड अरंडी तेल-तुर्की लाल तेल	सल्फोनेटेड अरंडी तेल कृषि में जैविक खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा पेपर उद्योग में डिफॉमिंग के रूप में , फार्मास्यूटिकल्स में अनडेसाइलेनेट के रूप में, पेंट्स, स्याही, सॉफ्टनर तथा स्नेहक के रूप में
अरंडी तेल	जुलाब, त्वचा देखभाल उत्पादों, कृत्रिम चमड़े का उत्पादन
हाइड्रोजनीकृत अरंडी तेल	पॉलिश, सौंदर्य प्रसाधन, विद्युत कैपेसिटर, कार्बन पेपर, स्नेहक, कोटिंग्स तथा ग्रीस
जनरेशन-2 संजात (डेरिवेटिव्स)	
सीबैसिक अम्ल	धातु के तरल पदार्थों में संक्षारक अवरोधक और ग्रीस में एक जटिल एजेंट के रूप में
2-हेप्टानॉल	इत्र और फ्लेवर (फलों के स्वाद के साथ) के लिए रासायनिक मध्यवर्ती, प्लास्टीसाइजर, शृंगार करने की सामग्री और डिटर्जेंट में
रीसिनोलीक अम्ल	साबुन, अमीनो यौगिकों, काटने वाले तेलों, औद्योगिक स्नेहक, पायसीकारी, धातु कम करने वाले यौगिकों में एस्टर
2-ऑक्टेनॉल	जैव-प्लास्टीसाइजर, सिंथेटिक स्नेहक आदि बनाने के लिए
अंडीसैक्लीनीक अम्ल	परफ्यूमरी में प्रयुक्त, रबर उद्योग में वल्कीनकरण त्वरक के निर्माण में
हेप्टेनोइक एसिड	औद्योगिक स्नेहक (विमानन, प्रशीतन, आदि), आवरणयुक्त कांच के लिए प्लास्टिसाइजर, मक्खन आदि के लिए एक ट्रेसर, लवण के रूप में, जलीय जंगरोधी के रूप में
12-हाइड्रोक्सी स्टायरिक अम्ल (12-एच.एस.ए.)	प्राकृतिक और सिंथेटिक रबड़ के लिए एक उत्प्रेरक और आंतरिक स्नेहक के रूप में
अंडेकेनोइक अम्ल-2	इत्र के लिए रासायनिक मध्यवर्ती, उदाहरण के लिए, मैक्रोस्कॉक्लिक मस्क तथा डर्माटिफिलिक क्रिया के साथ मलहम तैयार करने के लिए
जनरेशन-3 संजात (डेरिवेटिव्स)	
जिंक अनडेसाइलेनेट	त्वचा के सतही कवक संक्रमणों की रोकथाम, मुख्य रूप से टिनिअ पेडीस, और साथ ही खुजली, जलन और जलन से राहत देता है।
अंडीसैक्लीनीक एल्डिहाइड	साबुन, डिटर्जेंट, सौंदर्य देखभाल उत्पादों तथा घरेलू उत्पाद
हेप्टलडीहाइड	हेप्टलडीहाइड रबर उद्योग में वल्कीनकरण त्वरक के निर्माण में प्रयुक्त।
मिथाइल-12 हाइड्रोक्सी स्टीयरेट	प्लास्टिक, स्याही और कोटिंग्स मोल्ड स्नेहक तथा प्लास्टिक बाहर निकालने, मोल्डिंग और कैलेंडिंग में रिलीज एजेंट
मिथाइल रिसीनोलेट	पर्यावरण अनुकूल ईंधन के प्रदर्शन को बढ़ाने के लिए ईंधन योजक
मिथाइलअंडीसैलेनेट	सौंदर्य प्रसाधन, फार्मास्यूटिकल्स, और गंधरोधी तैयार करने के लिए
कैल्शियम अंडीसैलेनेट	यह एक अत्यंत प्रभावी, सहनकारी, व्यापक स्पेक्ट्रम कवकरोधी है
जिंकरिसीनोलेट	गंध-अवशोषित करने वाले एजेंट अणु

अरंडी तेल का महत्व

अरंडी तेल एकमात्र तेल है, जिसमें रीसिनोलीक अम्ल की मात्रा स्वाभाविक रूप से बहुत उच्च (85 प्रतिशत) होती है। इसके कारण इस तेल में विशेष गुण होते हैं। अरंडी तेल अणु में तीन प्रकार के क्रियात्मक समूह हैं जैसे कार्बोक्जिल समूह, हाइड्रॉक्सिल समूह और कार्बन-कार्बन डबलबंद। इसका पॉलीयुरेथेन बिल्डिंग ब्लॉकों के रूप में व्यापक उपयोग होता है। जैसे कि कास्टिंग रेजिन, इलस्टोमर, यूरैथेन फोम, कोटिंग्स, प्लास्टिक, स्याही, सौंदर्य प्रसाधन, फार्मास्यूटिकल्स और मैक्रोलैक्टोनस तथा पॉलीएस्टर्स, साबुन, अमीनो यौगिकों, इत्र और फ्लेवर्स के उत्पादन में, स्याही और गोंद, औद्योगिक स्नेहक, पायसीकारी, धातु का काम करने वाले यौगिकों में एस्टर, थर्मोसेटिंग एकरैलिक्स और प्लास्टिसाइजर के एस्टर के बीच का अंतर। रीसिनोलीक अम्ल और हाइड्रॉक्सी स्टीयरेट्स के आधार पर बने हुए चतुर्धातुक अमोनियम यौगिकों का इस्तेमाल प्रसाधन सामग्री जैसे त्वचा और बालों की देखभाल, व्यक्तिगत उत्पाद, कीटाणुनाशक और कपड़ा प्रसंस्करण एजेंटों के लिए किया जाता है। रीसिनोलीक अम्ल के आधार पर एक नया वर्ग जैवनिम्नीकरण योग्य पॉलीएनहाइड्राइड संश्लेषित किया गया है। अरंडी तेल लिपिस्टिक का एक महत्वपूर्ण घटक (30-40 प्रतिशत) है। यह कई दूसरी और तीसरी पीढ़ी के संजात संश्लेषण के लिए एक उत्कृष्ट अभिकारक के रूप में कार्य करता है। इसका कई औद्योगिक अनुप्रयोगों में उपयोगों करते हैं। सबसे प्रमुख दूसरी पीढ़ी के संजात रीसिनोलीक अम्ल, तुर्की लाल तेल, हाइड्रोजनेटेड अरंडी ऑयल, 12-हाइड्रॉक्सी स्टैरिएक एसिड (12-एचएसए), निर्जलित अरंडी ऑयल (वाणिज्यिक), सेबेसिसिक एसिड और अंडुसेलेनेनिक एसिड हैं। अरंडी के तेल की तीसरी पीढ़ी के संजात जिंक रिसीनोलेट जैसे उच्च विशेष रसायन हैं। लेकिन इनकी कीमत बहुत अधिक होती है।

बनाती है। यह धातु सुखाने के स्नेहक और बहुउद्देशीय औद्योगिक ग्रीस के लिए एकदम उपयुक्त हैं।

सरसों के प्रमुख रोगों का प्रबंधन

कृष्णा अवतार मीना*
कृषि विज्ञान केन्द्र, कुम्हेर, भरतपुर (राजस्थान)
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, राजस्थान

" सरसों एवं तोरिया भारत की प्रमुख तिलहनी फसलें हैं। मूंगफली के बाद क्षेत्रफल व उत्पादन की दृष्टि से ये दूसरे स्थान पर हैं। इस समूह की फसलें हमारे देश की तिलहन अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। सरसों एवं तोरिया की उपज को बढ़ाने तथा उसे टिकाऊ बनाने के मार्ग में एक प्रमुख समस्या रोगों का प्रकोप है। फसलों के कम व अस्थिर उत्पादन के लिए भी रोग ही उत्तरदायी हैं। "

सामान्य आकलन के अनुसार विभिन्न रोगों के आक्रमण से सरसों एवं तोरिया की फसलों की उपज में प्रतिवर्ष लगभग 10 से 20 प्रतिशत की हानि होती है। प्रस्तुत लेख में सरसों की फसल में लगने वाले प्रमुख रोगों के लक्षण एवं उनके प्रबंधन के बारे में जानकारी दी जा रही है।

सफेद रोली रोग
(सफेद रतुआ/श्वेत किट्ट)

रोग लक्षण

इस रोग से ग्रसित पौधों की पत्तियों की निचली सतह पर 1-2 मि.मी. व्यास के स्वच्छ व सफेद रंग के छोटे-छोटे फफोले (धब्बे) बन जाते हैं। ये बाद में आपस में मिलकर अनियमित आकार के हो जाते हैं। इन फफोलों के ठीक ऊपर पत्ती की ऊपरी सतह पर गहरे भूरे/कत्थई रंग के धब्बे दिखने लगते हैं। इनकी अतिवृद्धि के कारण ग्रसित भाग यथा तना, पुष्पक्रम, पुष्पदंड आदि फूलकर मांसल हो जाते हैं। इसके प्रभाव से उत्पन्न आंशिक व पूर्ण नपुंसकता के कारण बीज नहीं बन पाते। इस फूली हुई संरचना को स्टेगहेड कहते हैं।

रोग प्रबंधन

- फसल की समय पर बुआई करें। (1-20 अक्टूबर तक)
- स्वस्थ एवं प्रमाणित बीजों का उपयोग करें।
- बीज को मेटालेक्जिल (एप्रॉन 35 एस.डी.)/6 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोयें।
- रोगग्रसित फसल अवशेषों को जला दें अथवा जमीन में गाड़ दें।
- फसल को खरपतवाररहित रखें।
- फसल पर रोग लक्षण दिखाई देने पर

*सहायक प्राध्यापक (कीट विज्ञान)

रिडोमिल एम.जेड. 72/2 कि.ग्रा. का प्रति 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। यदि आवश्यकता पड़े तो दूसरा छिड़काव 15 दिनों बाद करें।

चूर्णिल आसिता रोग

रोग लक्षण

यह रोग पौधों की निचली पत्तियों के दोनों ओर मटमैले सफेद रंग के धब्बों के रूप में प्रकट होता है। अनुकूल वातावरण में धब्बे धीरे-धीरे बढ़ते जाते हैं। ये आपस में मिलकर पौधे को सम्पूर्ण रूप से ढक लेते हैं। इस प्रकार खड़ियानुमा चूर्ण सा फैल जाता है। ग्रसित पौधों की वृद्धि रुक जाती है और उन पर फलियां कम लगती हैं। ग्रसित फलियों में बीज सिकुड़े हुए, छोटे व कम मात्रा में पाए जाते हैं।

रोग प्रबंधन

- फसल की बुआई समय पर करें।
- डायनोकेप अथवा घुलनशील गंधक का 0.1 प्रतिशत की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर छिड़काव 15 दिनों बाद पुन: दोहराएं। रोग की रोकथाम के लिए गंधक का चूर्ण/25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से फसल पर भुरकाव करें।

काला धब्बा रोग

रोग लक्षण

यह रोग पौधों की निचली पत्तियों पर छोटे-छोटे गहरे भूरे रंग के बिन्दु के रूप में प्रकट होता है। ये तेजी से बढ़कर एक सें.मी. तक के वृत्ताकार बड़े धब्बों का रूप ले लेता है। इन्हीं धब्बों पर सकेन्द्री वलय भी बन जाते हैं। यह रोग तीव्र गति से बढ़कर ऊपर की पत्तियों, तनों व फलियों को ग्रसित करता है। ग्रसित फलियों के बीज भी प्रभावित होकर सिकुड़कर छोटे हो जाते हैं और अधिक उग्रता होने पर सड़ भी जाते हैं।

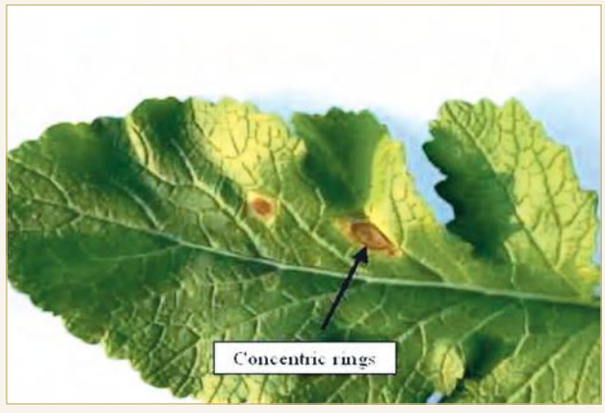

अल्टरनेरिया अंगमारी से प्रभावित पत्ती

रोग प्रबंधन

- स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज बोयें।
- फसल को खरपतवारमुक्त रखें।
- रोगग्रसित फसल अवशेषों को नष्ट कर दें।
- उर्वरकों की अनुशंसित मात्रा का ही प्रयोग करें।
- आइप्रोडियांन (रोवरॉल) अथवा मैन्कोजेब (डाईथेन एम-45)/2 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर बुआई के 40 एवं 70 दिनों पर दो छिड़काव करें।

मृदुरोमिल आसिता/तुलासिता रोग

रोग लक्षण

आरंभ में छोटे-छोटे गोलाकार मटमैले भूरे या बैंगनी रंग के धब्बे पत्तियों की निचली सतह पर बनते हैं। ये आपस में मिलकर अनियमित आकार ग्रहण कर लेते हैं। इन्हीं धब्बों पर मटमैले सफेद या बैंगनी रंग की कवकीय वृद्धि दिखाई देती है। यह ठंडे व नम वातावरण में अधिक उग्र रूप से प्रकट होती हैं। इन धब्बों के ठीक ऊपर पत्ती की ऊपरी सतह पर पीले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। सूजे हुए पुष्पांगों पर मृदुरोमिल आसिता व सफेद रोली के मिश्रित लक्षण भी दिखाई देते हैं।

रोग प्रबंधन

- फसल की समय पर बुआई करें। (1-20 अक्टूबर तक)।
- स्वस्थ एवं प्रमाणित बीजों का उपयोग करें।
- बीज को मेटालेक्जिल (एप्रॉन 35 एस.डी.)/6ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर बोयें।
- रोगग्रसित फसल अवशेषों को जला दें अथवा जमीन में गाड़ दें।
- फसल को खरपतवाररहित रखें।
- फसल पर रोग लक्षण दिखाई देने पर रिडोमिल एम.जेड. 72/2 कि.ग्रा. प्रति 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। यदि आवश्यकता पड़े तो दूसरा छिड़काव 15 दिनों बाद करें।

तना गलन रोग
(स्क्लेरोटिनिया तना सड़न)

रोग लक्षण

रोग, फसल पर फूल आने के बाद ही पनपता है। तने के निचले भाग में मटमैले या भूरे रंग के फफोले दिखाई देते हैं। प्राय: ये फफोले रुई जैसे सफेद जाल से ढके होते हैं। इस रोग से ग्रसित पौधे तेज हवा चलने पर फफोले वाली जगह से मुड़कर टूट जाते हैं। ऐसे पौधे समय से पहले ही पक जाते हैं। इनके पौधों के तनों को चीरकर देखे जाने पर उनके भीतर हरड़ या चूहे की मींगनी जैसी काली और कठोर संरचनाएं (स्क्लेरेशिया) दिखाई

सफेद रोली रोग से प्रभावित पत्ती

सफेद रोली रोग से प्रभावित पुष्पक्रम

सारणी: रोग एवं रोगजनक

क्र.सं.	रोग	रोगजनक
1	काला धब्बा	अल्टरनेरिया ब्रेसिकी
2	सफेद रोली	एल्बुगो केन्डीडा
3	मृदुरोमिल आसिता	परनोस्पोरा पैरासिटिका
4	चूर्णिल आसिता	एरीसाझी क्रूसीफेरेरम
5	तना गलन	स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोटियोरम
6	जड़ गलन	इरविनिया जीवाणु

सरसों के बीजोपचार के लिए लहसुन का सत

लहसुन का 2 प्रतिशत सत तैयार करने के लिए 20 ग्राम लहसुन को मिक्सी या पत्थर की सिल पर बारीक पीसकर कपड़े से छानकर एक लीटर पानी में मिलाकर घोल तैयार करें। एक लीटर लहसुन का 2 प्रतिशत सत 5-7 कि.ग्रा. सरसों के बीजोपचार के लिए पर्याप्त है। इसके लिए बीज को 10-15 मिनट तक भिगोया जाता है। इसके उपरान्त उपचारित बीज को छायादार जगह पर सुखाया जाता है। इससे बीज मशीन में बुआई के लिए आसानी से निकल जाता है। छिड़काव के लिए भी इसी अनुपात में सत तैयार करके प्रयोग करें।

देती हैं। इन पौधों में बीज मुरझाए हुए, वजन में हल्के और बारीक होते हैं। इनमें तेल की मात्रा बहुत कम होती है।

रोग प्रबंधन

- स्वस्थ व प्रमाणित बीजों का ही प्रयोग करें।
- अनुशंसित बीज दर का ही इस्तेमाल करें।
- बीज को 0.2 प्रतिशत कार्बेंडाजिम अथवा 2 प्रतिशत लहसुन के सत से अथवा ट्राईकोडर्मा 6 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोयें।
- रोगग्रसित फसल अवशेषों को जलाकर या गड्ढों में दबाकर नष्ट कर दें।
- गर्मी के दिनों में खेतों की गहरी जुताई करें।
- फसल में कतारों और पौधों के बीच उचित दूरी बनाए रखें।
- उर्वरकों की अनुशंसित मात्रा ही प्रयोग करें।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर 0.1 प्रतिशत कार्बेंडाजिम का फूल की अवस्था पर 20 दिनों के अंतराल में दो बार फसल पर छिड़काव करें। 2 प्रतिशत लहसुन के सत का घोल बनाकर फूल आने के समय (बुआई के 50 दिनों बाद) छिड़काव करें। फसल की 50 से 70 दिनों की अवस्था पर ट्राईकोडर्मा आधारित उत्पाद का 0.2 प्रतिशत सांद्रता वाले घोल का छिड़काव करें।
- उचित फसलचक्र अपनाएं।

जड़ गलन रोग

रोग लक्षण

यह रोग फूल आने की अवस्था पर खेत में अधिक नमी होने पर फैलता है। इस रोग के प्रकोप से पौधे, जड़ें सड़ने के कारण मर जाते हैं। यह रोग इरविनिया नामक जीवाणु से फैलता है।

रोग प्रबंधन

- स्वस्थ व प्रमाणित बीज का ही प्रयोग करें।
- उर्वरकों की अनुशंसित मात्रा का इस्तेमाल करें।
- रोग लक्षण दिखाई देते ही रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें।
- रोग का प्रकोप बढ़ने पर टेट्रासाइक्लिन 100 पी.पी.एम. तथा कार्बेंडाजिम 0.1 प्रतिशत की दर से घोल बनाकर फसल पर छिड़काव करें।

■

लेखकों से आग्रह

हमारे लेखक बंधु *खेती* पत्रिका के लिए अपने लेख और संबंधित फोटो, कवरिंग लैटर के साथ सिर्फ ई-मेल पर ही भेजें। ध्यान रखें कि फोटो जेपीजे फॉर्मेट में और उच्च रेज्योल्यूशन की हों। लेख में अधिकतम 1500 शब्दों की संख्या रखने का प्रयास करें। पाठक अपने सुझाव और प्रतिक्रियाएं ई-मेल के माध्यम से भेज सकते हैं। भेजने के लिए कृपया कृतिदेव 010 टाइप फेस का प्रयोग करें।

हमारा ई-मेल पता है :
khetidipa@gmail.com

–संपादक

मछुआरों की आय बढ़ाने वाली
समुद्री संवर्धन प्रौद्योगिकियां

इमेल्डा जोसफ*
भाकृअनुप-केन्द्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, कोच्चि-18

" भविष्य में जलीय खाद्य उत्पादन बढ़ाए जाने का मुख्य उपाय जलीय जीवों तथा वनस्पतियों का पालन और पैदावार में वृद्धि करना है। यह पिछले दो दशकों से लेकर >6 प्रतिशत की वार्षिक औसत बढ़त के साथ तीव्र गति से पनपने वाला खाद्य उत्पादन क्षेत्र है। इस क्षेत्र में वर्ष 1950 के <1 मिलियन टन से वर्ष 2013 में 70.2 मिलियन टन तक की वृद्धि हुई है। "

समुद्र के घिरे हुए भाग (पिंजरा/पेन) या टैंकों, पुन:चक्रण व्यवस्थाओं, तालाबों या समुद्र जल में खाद्य के लिए या अन्य उत्पादों के लिए समुद्र के जीवों का पालन करने के तरीके को समुद्री संवर्धन कहा जाता है। आगामी वर्षों में समुद्री मछलियों की अतिरिक्त आवश्यकता की पूर्ति के लिए यह एक आशाजनक क्षेत्र माना जाता है। भौगोलिक स्तर पर समुद्री संवर्धन द्वारा कई उच्च मूल्य वाली मछलियों जैसे पखं मछली, क्रस्टेशियन और शुक्ति, शंबु, सीपी, कोकिल्स और स्कालोप्स जैसे मोलस्को का उत्पादन किया जाता है। वर्ष 2013 के दौरान भौगोलिक खाद्य मछली उत्पादन में समुद्री संवर्धन का योगदान 25.5 मिलियन टन था, जो खाद्य मछली जलजीव पालन उत्पादन का 36.3 प्रतिशत था (वर्ष 2013 में विश्व खाद्य मछली जलजीव पालन उत्पादन 70.2 मिलियन टन था)। इनमें सबसे अधिक मोलस्को का भौगोलिक समुद्री संवर्धन उत्पादन (59.7 प्रतिशत) था, इसके बाद पखं मछली (22.7 प्रतिशत), क्रस्टेशिन्स (16.2 प्रतिशत) और अन्य (1.4 प्रतिशत) आते हैं। इसके अतिरिक्त समुद्री संवर्धन द्वारा 26.9 मिलियन टन स्थूल शैवालों का उत्पादन भी किया गया। वर्ष 2013 के दौरान समुद्री शैवालों सहित कुल समुद्री संवर्धन उत्पादन

*प्रधान वैज्ञानिक

52.4 मिलियन टन था, जो कुल जलजीव पालन उत्पादन का 53.9 प्रतिशत था (वर्ष 2013 में जलीय पौधों को भी शामिल करके कुल भौगोलिक जलजीव पालन उत्पादन 97.2 मिलियन टन था)।

जलजीव पालन में मछुआरों की आय बढ़ाए जाने लायक आधुनिक एवं सुव्यवस्थित प्रौद्योगिकियां हैं:

चिंगट संततियों का उत्पादन और पालन

भारत में चिंगट पालन नब्बे के वर्षों के प्रारंभ में आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु के तटीय जिलों में शुरू किया गया। चिंगट अब भी देश से निर्यात किए जाने वाले समुद्री खाद्यों में सबसे अधिक मूल्य कमाने वाला एकल उत्पाद है। भारत में चिंगट पालन वर्ष 2008 तक टाइगर श्रिंप *पेनिअस मोनोडोन* का एकल पालन था. लेकिन, वर्ष 1995 के दौरान श्वेत चित्ती सिंड्रोम वायरस के प्रभाव से *पी. मोनोडोन* का पालन कम हो गया। थाइलैंड, वियतनाम और इंडोनेशिया जैसे दक्षिण एशियाई देश, विदेशी चिंगट प्रजाति वाइट लेग चिंगट, *लिटोपेनिअस वन्नामी* का पालन शुरू करने लगे। *एल. वन्नामी* के विशिष्ट रोगजनक मुक्त और विशिष्ट रोगजनक प्रतिरोधी अंडशावकों के विकास से इस प्रजाति के बड़े पैमाने के पालन में सुविधा हुई, लेकिन भारत में *एल. वन्नामी* का प्रारंभिक स्तर का पालन वर्ष 2003 में शुरू किया गया और जोखिम विश्लेषण के पश्चात वर्ष 2009 में बड़े पैमाने में पालन किए जाने लगा। अब भारत में *एल. वन्नामी* के पालन में अत्यधिक प्रगति हुई और भारी मात्रा में उत्पादन किया जा रहा है।

एशियन समुद्री बास लैटस कैलकैरिफर

समुद्री बास मछली के नियंत्रित अवस्था में प्रजनन करने की व्यापक प्रौद्योगिकी वर्ष 1997 में शुरू की गयी और तब से लेकर प्रौद्योगिकी का सुधार और मानकीकरण किया गया। इस प्रौद्योगिकी में प्रग्रहण अवस्था में अंडशावक विकास, परिपक्वता का त्वरण, पानी की गुणता प्रबंधन जैसे अनुकूल वातावरण, स्वास्थ्य प्रबंधन और खाद्य प्रबंधन, होर्मोन नियंत्रण से अंडजनन प्रेरित करना और पुन:चक्रण जलजीव पालन व्यवस्था में प्राकृतिक प्रजनन की सुविधा आदि सम्मिलित है।

कोबिया *राचिसेन्ट्रोन कनाडम*

तेज वृद्धि दर, प्रग्रहण अवस्था में प्रजनन के लिए अनुकूलता, कम लागत का उत्पादन, मांस की अच्छी गुणता और बाजार में मांग आदि की गुणताओं के कारण कोबिया मछली समुद्री संवर्धन के लिए

समुद्री मत्स्य संवर्धन से किसानों की आय दोगुनी करना

- पालन स्थानों के पास (चिंगट/मछली/मोलस्कों के लिए) संतति उत्पादन एककों का विकास। इससे संतति की खरीद के समय होने वाला परिवहन प्रभार और ऑक्सिजन पैकिंग की लागत कम की जा सकती है। संततियों की गुणता बेहतर होगी। इससे परिवहन के दौरान संततियों की हानि को किया जा सकता है। इस तरह अधिक पालन खेतों का परिचालन किया जाएगा और इससे उत्पादन भी बढ़ाया जा सकता है।
- हैचरी में उत्पादित पोना मछली के उंगलिमीन के आकार या तालाब में संभरण करने के आकार तक पालन किए जाने के लिए विभिन्न स्थानों में नर्सरी पालन एककों की स्थापना।
- पिंजरा मछली पालन के स्थानों पर पिंजरे और जाल निर्माण की इकाइयों की स्थापना। आयातित सामग्रियों पर अतिरिक्त शुल्क लगाकर देशीय डिजाइनों और सामग्रियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस तरह निर्मित सामग्रियों की सुरक्षा का निर्धारण किया जाना चाहिए।
- नियमित आपूर्ति और उत्पादों की गुणता के निर्धारण के लिए संग्रहणोत्तर सुविधाओं की स्थापना की जानी चाहिए। किसानों को मध्यस्थ व्यक्तियों के हस्तक्षेप के बिना अपना उत्पाद बेचने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उत्पाद की गुणता सुनिश्चित करने हेतु पालन स्थान से सीधा विपणन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- अधिशेष/अतिरिक्त उत्पाद के संग्रहणोत्तर प्रसंस्करण को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उप-उत्पादों को न्यूट्रास्यूटिकलों, औषधियों या उर्वरकों के निर्माण के लिए उपयोग किया जाना चाहिए ताकि किसानों को इनसे अतिरिक्त आय मिल सकेगी
- जलजीव पालन के सभी स्तरों में मानव संसाधन विकास सुनिश्चित किया जाना चाहिए, ताकि पालन परिचालन के सारे चरणों में प्रशिक्षित कार्मिकों की उपयोगिता की जा सके।
- आवश्यकता और पालन के विस्तार के अनुसार जहां तक हो सके, विश्लेषण प्रयोगशालाओं की स्थापना की जानी है। इससे पालन के किसी भी अवस्था में तुरंत ध्यान मिल सकेगा।
- नियमित रूप से पानी का विनियम और भूमि की उपलब्धता नहीं होने वाले स्थानों में तट पर आधारित आरएएस और एक्वापोनिक्स की स्थापना की जानी है।
- प्रौद्योगिकियों और पालन परिचालन को अद्यतन करने के लिए अनुसंधान एवं विकास की कार्यविधियां चालू की जानी चाहिए।

समुद्री पंखमछली

भौगोलिक स्तर पर समुद्री पंखमछली पालन में वर्ष 1990 से लेकर 9.3 प्रतिशत की तेज बढ़ती हुई है। समुद्र में पालन की जाने वाले पंख मछली ग्रुपों में सालमोनिड, अम्बरजैक्स, सी ब्रीम, समुद्री बास, क्रॉकेर्स, ग्रूपर, मल्लेट, चपटी मछली, स्नापेर्स, कोबिया, पोम्पानो, कोड्स, फेर्स और ट्यूना प्रमुख हैं। विश्व के कई भागों में व्यावसायिक प्रमुख पंखमछलियों के बड़े पैमाने के उत्पादन के लिए पिंजरा मछली पालन प्रचलित हुआ है और यह तरीका मछुआरों की आय केवल दोगुनी ही नहीं, बल्कि बहुगुनी करने में सहायक सिद्ध होगा। अब सरकारी स्तर पर केवल एशियन समुद्री बास मछली *लैटस कैलकैरिफर* के वाणिज्यिक तौर पर संतति उत्पादन की प्रौद्योगिकी मौजूद है। अगर वाणिज्यिक स्तर पर संतति उत्पादन की प्रौद्योगिकियां विकसित नहीं है तो देश में समुद्री खाद्य उत्पादन सेक्टर का विकास नहीं हो पाएगा। हाल के दिनों में केन्द्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान (सीएमएफआरआई) ने कोबिया *(राचिसेन्ट्रोन कनाडम)* और सिल्वर पोम्पानो *(ट्रकिनोटस ब्लोची)*, इंडियन पोम्पानो *टी. मूकाली* और ग्रूपर *एपिनिफेलस कोइओइडस* के प्रजनन और संतति उत्पादन के लिए अनुसंधान कार्यविधियां तेज कर रहा है।

बेहतर प्रजाति मानी जाती है। हाल के वर्षों के दौरान एशियाई देशों में कोबिया मछली के संतति उत्पादन और पालन का प्रचार हो रहा है। भारत में कोबिया मछली पालन की संभावनाओं को मानते हुए सीएमएफआरआई ने देश में प्रथम बार कोबिया मछली के अंडशावकों का विकास किया और कई बार परीक्षणात्मक ढंग से इस मछली के संततियों का उत्पादन सफल रूप से किया। स्फुटनशाला में उत्पादित कोबिया मछली के उंगलीमीनों को विभिन्न खाद्य रणनीतियों के साथ समुद्री पिंजरों में पालन करने के तरीके विकसित किए, परीक्षण किए और आर्थिक दृष्टि से व्यावहारिक पालन व्यवस्था विकसित किया गया।

भारतीय पोम्पानो *टी. मूकाली*

यह प्रजाति *टी. ब्लोची* से भी तेज बढ़ने वाली है और सीएमएफआरआई द्वारा अंडशावक विकास, अंडजनन, संतति उत्पादन और तालाबों और पिंजरों में पालन की प्रैद्योगिकी विकसित की गयी है।

सिल्वर पोम्पानो *ट्रकिनोटस ब्लोची*

भारत में पालन की जाने वाली उच्च मूल्य वाली समुद्री ट्रॉपिकल पंख मछलियों में सिल्वर पोम्पानो, *टी. ब्लोची* तेज वृद्धि दर, मांस की अच्छी गुणता और बड़ी बाजार मांग की वजह से सबसे प्रमुख है। यह अत्यधिक लोकप्रिय प्रजाति है और मांग की पूर्ति केवल पालन से ही की जा सकती है। भारत में सिल्वर पोम्पानो मछली के अंडशावक विकास, अंडजनन, डिंभक पालन, उंगलिमीनों के उत्पादन एवं पालन के लिए सीएमएफआरआई ने प्रौद्योगिकी का विकास और मानकीकरण किया है।

सफलता गाथा

श्री टी.वी. श्रीकुमार: पिंजरा मछली पालन में सफल लघु उद्यमी

श्री श्रीकुमार ने वर्ष 2015 में पिंजरा मछली पालन की कार्यविधियां शुरूआत की। पहले उन्होंने बांस के पिंजरे में मछली पालन शुरू किया और बाद में सीएमएफआरआई के हस्तक्षेप से वे केरल के एरणाकुलम जिले के पिशला और कडमक्कुडी गांवों में जीआई पाइप के पिंजरों में मछली पालन करने लगे। तब से लेकर वे नियमित रूप से यह कार्य कर रहे हैं और अब उनके पास 4×4 मीटर के आयाम के 10 पिंजरे हैं। श्री श्रीकुमार ने सीएमएफआरआई के समुद्री संवर्धन प्रभाग से पिंजरा मछली पालन में प्रशिक्षण प्राप्त किया। बाद में उन्होंने सीएमएफआरआई के कृषि विज्ञान केन्द्र, एरणाकुलम द्वारा आयोजित कुशलता विकास कार्यक्रमों में भाग लिया और एक सफल मछली पालनकार और लघु उद्यमी बन गए। श्रीकुमार ने अपने गांव के अन्य तीन युवा लोगों के साथ 'कर्मसेना' नामक ग्रुप बनाया है, जो किसी भी स्थान पर पिंजरा सजाना, मछली जाल सिलाना, पिंजरे की स्थापना आदि कार्यों के लिए हमेशा तैयार है। कर्मसेना सोसाइटी अधिनियम के अंदर पंजीकृत है। इसलिए पिंजरा मछली पालन से संबंधित सभी कार्यविधियों के लिए लाइसेन्स प्राप्त है।

श्री श्रीकुमार की शैक्षिक योग्यता मेट्रिकुलेशन होने पर भी वे पिंजरा मछली पालन से प्रति वर्ष 5 लाख रुपये कमाते हैं। वे गांव के स्तर पर प्रत्याशी मछुआरों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन करते हैं। इन सबके अलावा वे बैंकों तथा एजेन्सियों से वित्तीय सहायता प्राप्त करने हेतु परियोजना तैयार करते हैं और मछली पालन करने वाले अन्य मछुआरों को मछली संतति और खाद्य खरीदने तथा उत्पादों के विपणन में सहायता प्रदान करते हैं।

अलंकारी मछली पालन

भौगोलिक आधार पर समुद्री अलंकारी मछली विपणन कम मात्रा में उच्च मूल्य प्राप्त लाभदायक उद्योग के रूप में उभरकर आया है। केन्द्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान द्वारा राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय विपणन में बड़ी मांग वाली एक दर्जन से अधिक समुद्री अलंकारी मछलियों के प्रजनन, संतति उत्पादन और पालन की तकनीक विकसित की है। इनमें *एम्फीप्रियोन पेर्कुला, ए. ओसेल्लारिस, ए. पेरीडेरयन, ए. एफीप्पियम, डासिलस अरानस, पोमासेन्ट्रस सीरूलेस* और *क्रिसीप्टेरा सयानिया* सम्मिलित हैं. समुद्री उष्णकटिबंधीय अलंकारी मछली की अधिक मूल्य होने के नाते इनका हैचरी उत्पादन और पालन अत्यंत लाभदायक है।

पिंजरा मछली पालन

भारत में मछली उत्पादन का भविष्य पिंजरा मछली पालन पर निर्भर है। यह माना जाता है कि आगामी वर्षों के दौरान भारत की लगभग 8129 कि.मी. की तट रेखा का एक प्रतिशत पिंजरा मछली पालन के लिए उपयोग किया जा सकता है। समुद्र, नदीमुखों, खारा पानी या नदियों में स्थान की आवश्यकता और सुविधा के अनुसार पिंजरा मछली पालन किया जा सकता है। आवश्यक मानदंडों को पूरा करने वाले उचित स्थान की पहचान करने के बाद स्थानीय प्राधिकारियों से अनुमति प्राप्त करके विभिन्न आयामों के लागत अनुकूल पिंजरों की स्थापना की जा सकती है।

विभिन्न हस्तक्षेपों के द्वारा किसानों की आय बढ़ायी जा सकती है। जलजीव पालन से संबंधित कार्यविधियों की सफलता सुनिश्चित करने और प्रौद्योगिकी के अपव्यय तथा विभिन्न योजनाओं द्वारा वित्तीय लाभ प्राप्त करने हेतु सभी किसानों को अनुसंधान संस्थाओं, विकास निकायों और सरकारी स्थापनाओं के साथ संपर्क में होना अनिवार्य है। ■

पुन:चक्रण जलजीव पालन प्रणाली

बंद जलजीव पालन प्रणाली एक नए एवं व्यापक वाणिज्यिक अवसर प्रदान करती है। पुन:चक्रण जलजीव पालन प्रणाली टैंक पर आधारित प्रणाली है। इसमें मछली को नियंत्रित पर्यावरणीय स्थिति में उच्च सघनता में पालन किया जा सकता है। यह बंद-लूप सुविधा है, जिसमें पानी को उसी व्यवस्था के अंदर ही बनाए रखने के लिए उपचार किया जाता है। आरएएस में मछली टैंक में उपचार प्रक्रिया के माध्यम से पानी बहकर फिर टैंक में वापस आता है। पुन:चक्रण प्रणाली में मछली पालन टैंक में पानी उपलब्ध करने हेतु भूमि पर आधारित पानी का पम्प और पानी के उपचार के लिए पर्याप्त उपकरण जैसे ठोस पदार्थ निकालने, जीव विज्ञानीय निस्यंदन, पानी के तापन या शीतलन, विलीन गैस के नियंत्रण, पानी का कीटाणु शोधन और फोटो-थर्मल नियंत्रण आदि सम्मिलित हैं। जैव-सुरक्षित कोबिया संततियों का पूरे वर्ष का टिकाऊ उत्पादन केवल पुन:चक्रण प्रणाली से ही किया जा सकता है।

दिसंबर के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, विनोद कुमार सिंह, कपिला शेखावत, प्रवीण कुमार उपाध्याय और **एस.एस. राठौर**
सस्य विज्ञान संभाग
भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012

" अजैविक तनावों, खासकर कम तापमान के कारण पाला पड़ने की पूरी आशंका होती है। सरसों, मटर और अन्य सब्जी वाली फसलों में इनसे बचने के लिए उपयुक्त प्रबंधन आवश्यक है। खेत में प्रर्याप्त नमी होने पर फसल बढ़वार के साथ-साथ पौधों में पाले से बचने की क्षमता भी बढ़ जाती है। सिंचाई प्रबंधन के साथ-साथ पोषक तत्वों पर भी विशेष रूप से ध्यान देने की जरूरत है। दिसंबर के अंत तक तोरिया की फसल भी पककर तैयार हो जाती है। तोरिया की कटाई के उपरांत दूसरी फसल की बुआई में देरी नहीं करनी चाहिए। चारे वाली फसलें जैसे बरसीम, जई और रिजका इत्यादि कटाई के लिए तैयार हो जाती हैं। दिसंबर में रबी फसलों के लिए उन्नत सस्य कृषि क्रियाएं संबंधी खास कार्यों पर ध्यान दें। "

भारतीय कृषि के लिए रबी का मौसम अत्यधिक महत्वपूर्ण है। दिसंबर का महीना खेती के लिहाज से अहम है। इस समय तापमान में गिरावट के कारण खड़ी फसल में सस्य क्रियाएं करना मुश्किल हो जाता है। साथ ही पाले के साथ-साथ कुछ रोग, कीट और व्याधियों का प्रकोप भी अधिक हो जाता है। इस महीने में अधिकतर फसलें अपनी क्रांतिक बढ़वार की अवस्था में होती हैं। समय पर बोया गया गेहूं इसमें क्रांतिक चंदेरी जड़ अवस्था में होता है। इसके कारण सिंचाई प्रबंधन बेहद आवश्यक हो जाता है। तिलहन (राई-सरसों और तोरिया), दलहन (चना, मटर, मसूर), धान्य (गेहूं, जौ और मक्का), गन्ना और सब्जी वाली फसलों में भी जल-मांग के अनुसार सिंचाई प्रबंधन करने से अच्छी वृद्धि तथा उपज में बढ़ोतरी होती है।

गेहूं की प्रजाति एचडी-2967

गेहूं और जौ

- वर्तमान समय में प्रति इकाई भूमि से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए सघन या बहु कृषि प्रणालियों को अपनाया जा रहा है। मुख्य फसलों के बीच में कम अवधि वाली फसलें जैसे मटर, आलू, तोरिया आदि को उगाया जाता है। इससे गेहूं की बुआई समय पर नहीं हो पाती है। इसी प्रकार गन्ने की कटाई के बाद गेहूं की बुआई भी समय पर नहीं हो पाती है। सामान्यतया पाया गया है कि देरी से बोये गये गेहूं में भी किसान सामान्य गेहूं के लिए अनुमोदित सस्य कृषि क्रियायें अपनाते हैं। इसी कारण इसकी उत्पादकता काफी कम हो जाती है। इसका कारण दिसंबर में तापमान कम होने से अंकुरण काफी कम होना, प्रारंभ में धीमी गति से वृद्धि एवं फरवरी-मार्च में तापमान बढ़ जाने के कारण फसल का जल्दी पकना है। अत: देरी से बोये जाने वाले गेहूं से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए उन्नत तकनीकियों को ही अपनाना चाहिए।
- समय पर गेहूं की बोई गई फसल में इस समय बढ़वार की क्रांतिक अवस्था होती है और उपयुक्त सस्य कृषि क्रियायें, गेहूं में कल्लों की संख्या के साथ-साथ सम्पूर्ण वृद्धि चरण को भी प्रभावित करती हैं। गेहूं की बुआई के 20-25 दिनों पर 5-6 सें.मी. की पहली सिंचाई ताजमूल (सीआरआई) अवस्था पर और दूसरी सिंचाई 40-45 दिनों बाद कल्ले निकलते समय करें।
- पछेती गेहूं से अधिक उत्पादन लेने के लिए बुआई एक निश्चित समय जैसे कि पूर्वी भारत में 10 दिसंबर तक, उत्तरी भारत में 25 दिसंबर तक एवं दक्षिणी भारत में 30 नवंबर तक कर देनी चाहिए। बीज साफ, स्वस्थ एवं खरपतवारों के बीजों से रहित होना चाहिए। छोटे व कटे-फटे तथा सिकुड़े हुए बीजों को निकाल देना चाहिए। आधारीय एवं प्रमाणित बीजों को ही बोना चाहिए। यदि बीज शोधित न हों तो 1.0 कि.ग्रा. बीज को 2.5 ग्राम थीरम या 2 ग्राम कैप्टॉन या 2.5 ग्राम बाविस्टीन नामक दवा से शोधित कर लें। गेहूं की अवशेष बुआई शीघ्र पूरी कर लें।
- पछेती बुआई की परिस्थितियों में भी अधिकतर किसान सामान्य प्रजातियों को ही उगाता है। इनसे उनकी उत्पादकता

काफी कम हो जाती है। ऐसी स्थिति में अधिक पैदावार लेने के लिए देरी से बुआई के लिए अनुमोदित प्रजातियों को ही बोना चाहिए। सिंचित अवस्था में देरी से बुआई के लिए उन्नतशील प्रजातियां जैसे. एच.डी.-3117, एच.डी. -3118, एच.डी.-3059, एच.डी. -2985, एच.डी.-2643, एच.डी. -2864, एच.डी.-2824, एच.डी. -2932, एच.डी.-2894, एच.डी. -2833, एच.डी.-2501, पूसा गोल्ड (डब्ल्यू.आर.-544), डी.बी.डब्ल्यू. -14, डी.बी.डब्ल्यू.-16, डी.बी.डब्ल्यू. -71 पर्वतीय क्षेत्रों के लिए वी.एल. -892, एच.एम.-375, एच.एस.-207, एच.एस.-420 व एच.एस.-490 प्रमुख हैं। यदि दानों का आकार बड़ा या छोटा है तो उसी अनुपात में बीज दर घटाई या बढ़ाई जा सकती है।

- सिंचित क्षेत्रों में पछेती बुआई एवं लवणीय-क्षारीय मृदाओं के लिए बीज दर 125 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर पर्याप्त होती है। इसी प्रकार उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र, जहां धान के बाद गेहूं बोया जाता है, के लिए 125 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बीज की आवश्यकता होती है। सामान्यत: गेहूं को 15-23 सें.मी. की दूरी पर पंक्तियों में बोया जाता है। देरी से बोने पर तथा ऊसर भूमि में पंक्तियों की दूरी 15-18 सें.मी. रखनी चाहिए। अच्छे अंकुरण के लिए बीज की गहराई 4-5 सें.मी. हो।
- बुआई से पूर्व गोबर की खाद 5-10 टन प्रति हैक्टर की दर से मृदा में अच्छी तरह मिला दें। यह भूमि का उचित तापमान एवं जल धारण क्षमता बनाये रखने में सहायक होती है। इससे पौधे की अच्छी बढ़वार एवं विकास होता है। पछेती गेहूं के लिए प्रति हैक्टर 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 40 कि.ग्रा. पोटाश की आवश्यकता होती है। बुआई के समय बलुई दोमट भूमि में फॉस्फेट और पोटाश की पूरी मात्रा के साथ 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, जबकि भारी दोमट में 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन का प्रयोग करें। गेहूं की फसल में यदि जिंक सल्फेट की कमी है तो 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से बुआई के समय खेत में डालनी चाहिये। यदि इसके बाद भी जिंक सल्फेट की कमी दिखाई देती है तो 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव (21 प्रतिशत) किसान भाई अवश्य करें। बलुई दोमट भूमि में प्रति हैक्टर 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन व भारी दोमट भूमि में 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की टॉप ड्रेसिंग पहली सिंचाई के समय अवश्य करें। बलुई दोमट भूमि में नाइट्रोजन की शेष 40 कि.ग्रा. मात्रा दूसरी सिंचाई के समय आवश्यक होगी। गंधक की कमी को दूर करने के लिए गंधकयुक्त उर्वरक जैसे अमोनियम सल्फेट या सिंगल सुपर फॉस्फेट का प्रयोग अच्छा रहता है। इसी प्रकार मैंगनीज की कमी वाली भूमि में 1.0 कि.ग्रा. मैंगनीज सल्फेट को 200 लीटर पानी में घोलकर पहली सिंचाई के 2-3 दिनों पहले छिड़काव करना चाहिए।
- गेहूं की फसल की सम्पूर्ण अवधि में लगभग 450-650 मि.मी. जल की आवश्यकता होती है। अच्छी उपज लेने के लिए फसल की उचित अवस्था पर सिंचाई करना आवश्यक होता है। सिंचाइयों की संख्या मृदा की किस्म, सतह से पानी की गहराई, वर्षा एवं पानी की उपलब्धता पर निर्भर करती है। प्रथम सिंचाई क्रांतिक जड़ (क्राउन रूट) की अवस्था 20-25 दिनों पर करनी चाहिए। तत्पश्चात् 20-22 दिनों के अंतराल पर आवश्यकतानुसार दूसरी, तीसरी व चौथी सिंचाई करनी चाहिए। कम अवधि की फसल होने के कारण पछेती बुआई के लिए चार सिंचाइयां सामान्यत: पर्याप्त होती हैं। आवश्यकता होने पर पांचवीं सिंचाई भी की जा सकती है। सीमित मात्रा में पानी उपलब्ध होने पर यदि तीन सिंचाई की जा सकती हों तो प्रथम सिंचाई क्रांतिक जड़ें निकलने, दूसरी बाली निकलने से पूर्व तथा तीसरी दुग्धावस्था पर करें। यदि दो सिंचाइयां उपलब्ध हों तो पहली सिंचाई क्रांतिक जड़ (क्राउन रूट) तथा दूसरी सिंचाई बाली निकलने से पूर्व करें।

गेहूं के खरपतवारों का नियंत्रण

- गेहूं की फसल के खरपतवार जैसे-गेहूं का मामा, कृष्णनील, मोथा, बथुआ, चटरी-मटरी, हिरनखुरी, सैंजी, अंकरी, अंकरा, जंगली जई, जंगली पालक, जंगली गाजर मुख्य है। फसलों में सर्वाधिक नुकसान खरपतवारों के द्वारा होता है। इसलिए खरपतवारों का समय से नियंत्रण बहुत ही आवश्यक है। सामान्यत: खरपतवार फसलों को प्राप्त होने वाली 47 प्रतिशत नाइट्रोजन, 42 प्रतिशत फॉस्फोरस, 50 प्रतिशत पोटाश, 24 प्रतिशत मैग्नीशियम एवं 39 प्रतिशत कैल्शियम तक का उपयोग कर लेते हैं। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण के लिए 2, 4-डी सोडियम साल्ट 500 ग्राम या मैटसल्फ्यूरॉन मिथाइल मैटसल्यूरॉन मिथाइल 5 प्रतिशत की 40 ग्राम या कारफेन्ट्राजोन इथाइल 30 ग्राम की मात्रा 500-600 लीटर पानी में घोलकर 25-30 दिनों बाद प्रति हैक्टर छिड़काव करें। संकरी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण के लिए आइसोप्रोट्यूरॉन 750-1000 या क्लोडीनाफोप प्रोपागाइल 60 ग्राम या फ्लॉक्साप्राप-पी. ईथाइल 90-100 ग्राम या पीनोक्साडेन 50 ग्राम या सल्फोसल्फ्यूरॉन 75 डब्ल्यू.पी. की 33 ग्राम की मात्रा 500-600 लीटर पानी में घोलकर 30-35 दिनों बाद प्रति हैक्टर छिड़काव करें। संकरी एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण के लिए 12 ग्राम मिजोसल्फ्यूरॉन + 24 ग्राम आइडोसल्फ्यूरॉन या 25 ग्राम सल्फोसल्फ्यूरॉन + 5 ग्राम मैटसल्फ्यूरॉन या 60 ग्राम क्लोडीनफोप प्रोपागाइल + 5 ग्राम मैटसल्फ्यूरॉन या 60 ग्राम क्लोडीनफोप प्रोपागाइल + 60 ग्राम कारफेन्ट्राजोन मिथाइल की मात्रा 500-600 लीटर पानी में घोलकर 30-35 दिनों बाद प्रति हैक्टर छिड़काव करें।

चना बीजी-372

मसूर-शेरी

चना, मटर और मसूर

- उत्तरी भारत में धान, कपास, मक्का, ज्वार, बाजरा एवं गन्ने की फसल काटने के बाद जहां सिचांई के साधन उपलब्ध हैं, वहां चने की बुआई नवंबर के अंत तक या दिसंबर के प्रथम सप्ताह तक कर सकते हैं। इसमें ये पूर्ण बढ़वार अवस्था में होती है। इसमें सिंचाई प्रबंध के साथ-साथ, खरपतवार और कीट-रोगों का प्रबंधन भी आवश्यक हो जाता है। चने में जल मांग संचित जल से ही पूरी हो जाती है। फिर भी मृदा में नमी के अभाव में सिचांई की सुविधा उपलब्ध होने तथा जाड़े की वर्षा न होने पर पहली सिंचाई बुआई के 40-45 तथा 70-75 दिनों के बाद सिचांई करना लाभप्रद होता है। फूल आने की अवस्था में सिंचाई नहीं करनी चाहिए अन्यथा फूलों के गिरने तथा अतिरिक्त वानस्पतिक वृद्धि होने की समस्या उत्पन्न हो सकती है। दलहनी फसलों में स्प्रिंक्लर विधि से सिंचाई करना सर्वोत्तम है।
- उत्पादकता में कमी को रोकने के लिए फसलों को खरपतवारों से मुक्त रखना आवश्यक है। बुआई के 30 दिनों बाद एक निराई-गुड़ाई कर खरपतवारों को निकालना काफी लाभदायक रहता है। इससे जड़ों की अच्छी बढ़वार तथा फसल से अधिक उपज प्राप्त होती है। चने में बुआई के 35-40 दिनों बाद शीर्ष कालिका की तुड़ाई से अधिक शाखाएं बनने से भी पैदावार अधिक होती है।
- देर से बोई गई फसल में शाखाओं के बनते समय अथवा फली बनते समय 2 प्रतिशत यूरिया/डीएपी के घोल का छिड़काव करने से समुचित पैदावार मिलती है।
- चने में भी बहुत से रोग होते हैं, जिससे चने की पैदावार पर काफी असर पड़ता है। समय पर इन रोगों की पहचान एवं उचित रोकथाम से फसल को होने वाले नुकसान को काफी कम किया जा सकता है। झुलसा रोग की रोकथाम के लिए प्रति हैक्टर 2 कि.ग्रा. जिंक मैंगनीज कार्बोनेट को एक हजार लीटर पानी में घोलकर 10 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें।
- उत्तर-पूर्वी मैदानी क्षेत्रों में फूल बनते समय (बुआई के 50 दिनों बाद) एक सिंचाई लाभदायक पायी गई है। उत्तर-पश्चिमी मैदानी तथा मध्य भारत क्षेत्रों में दो सिंचाइयां जैसे शाखाएं निकलते समय तथा दूसरी फूल बनते समय सर्वाधिक क्रान्तिक पाई गई हैं।
- फसल की नियमित निगरानी करें। इन फसलों में कवकजनित रोगों जैसे रतुआ तथा चूर्णिल आसिता की रोकथाम के लिए सल्फरयुक्त कवकनाशी जैसे सल्फेक्स को 2.5 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से 800-1000 लीटर पानी में घोलकर 15 दिनों के अंतराल में 2-3 बार फसल पर आवश्यकतानुसार छिड़काव करें या घुलनशील गंधक (0.2-0.3 प्रतिशत) का फसल पर छिड़काव करें। चूर्णिल आसिता के नियंत्रण के लिए कार्बेन्डाजिम (1 ग्राम/लीटर पानी) अथवा डीनोकैप, केराथेन 48 ई.सी. (0.5 मि.ली./लीटर पानी) का भी प्रयोग कर सकते हैं। रतुआ रोग की रोकथाम के लिए मैंकोजेब दवा की 2.0 कि.ग्रा. या डाइथेन एम.-45 को 2 कि.ग्रा./हैक्टर या हेक्साकोनाजोटा 1 लीटर या प्रोपीकोना 1 लीटर की दर से 600-800 लीटर पानी में घोलकर खड़ी फसल पर छिड़काव करें। उचित फसल चक्र अपनायें एवं रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें।

मटर पूसा-प्रभात

- इंडोक्साकार्ब (1 मि.ली./लीटर पानी) का छिड़काव कीटों से होने वाली क्षति को कम करता है। मटर में तना छेदक कीट की रोकथाम के लिए डाइमिथोएट 30 ई.सी. दवा की 1.0 लीटर मात्रा और फलीछेदक कीट की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस 36 ई.सी. दवा की 750 मि.ली. की दर से 800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- मसूर की फसल में भी अधिक पानी की आवश्यकता नहीं है, किन्तु अधिक पैदावार के लिए एक या दो सिंचाई (पुष्पावस्था से पूर्व बुआई के 40-45 दिनों बाद) देने से उत्पादकता में वृद्धि होती है। यदि वर्षा हो जाती है तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, अधिक पानी होने पर मसूर में इसका प्रतिकूल असर होता है।
- माहूं का प्रकोप होने पर डाईमिथोएट (0.03 प्रतिशत) का छिड़काव करें। रतुआ रोग के नियंत्रण के लिए घुलनशील गंधक (0.2-0.3 प्रतिशत) अथवा मेन्कोजेब (0.02 प्रतिशत) का छिड़काव करें। रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें।
- जब यौन आकर्षण जाल में 3-4 लगातार रातों तक फलीछेदक के 4-5 लार्वा पाएं तो कीट प्रबंधन आरंभ करें। अल्प कालिक प्रजातियों में इंडोक्साकार्ब (1 मि.ली. प्रति लीटर पानी) का प्रथम छिड़काव एवं निबौली के सत से 5 प्रतिशत का द्वितीय छिड़काव करें। आवश्यकता होने पर निबौली के सत अथवा न्यूक्लियर पॉलीहड्रोसिस विषाणु 250 लार्वा समतुल्य/हैक्टर की दर से तृतीय एवं चौथा छिड़काव करें।
- अरहर स्ट्रिपर 150 कि.ग्रा./घंटे की क्षमता के साथ यह अरहर की फलियों, पत्तियों और पौधे को क्षति पहुंचाये बिना अलग कर देता है। इस प्रकार अलग की गई फलियों और पत्तियों की वर्टिकल थ्रेशर से मड़ाई की जा सकती है।
- जून में बोई गई अरहर की कम अवधि की किस्में अभी कटाई के लिए तैयार हो जाती हैं। फसल का रंग सुनहरी-भूरा होने पर कटाई कर लेनी चाहिए। लगभग 7-8 दिनों खेत में फसल सुखाकर मड़ाई करनी चाहिए। उपयुक्त नमी पर फसल का भंडारण

सरसों पूसा तारक

करने से बाजार में अच्छा मूल्य प्राप्त हो जाता है।

राई-सरसों और तोरिया/लाही

- दिसंबर के अंतिम सप्ताह में तापमान में गिरावट के कारण पाले की आशंका रहती है। इससे फसल बढ़वार और फली विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इससे बचने के लिए सल्फरयुक्त रसायनों के प्रयोग लाभकारी होते हैं। डाई मिथयाइल सल्फो ऑक्साइड का 0.2 प्रतिशत अथवा 0.1 प्रतिशत थायो यूरिया का छिड़काव लाभप्रद होता है। इसके साथ-साथ पाला पड़ने के समय सिंचाई करने से भी पाले का दुष्प्रभाव कम होता है।
- उन्नत किस्मों का स्वस्थ बीज, समय पर बुआई एवं फसल सुरक्षा तरीके अपनाकर इसकी उत्पादकता को और अधिक बढ़ाया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में समय पर बुआई नहीं हो पाती है, वहां मध्य दिसंबर तक पूसा सरसों 26, पूसा सरसों 25 और पूसा सरसों 28 की बुआई की जा सकती है। ये प्रजातियां कम अवधि की हैं। ये देरी से बुआई करने पर भी अच्छी पैदावार देने में सक्षम हैं।
- तिलहनी फसलों को खरपतवारों से मुक्त रखने के लिए 20-25 दिनों में एक बार निराई-गुड़ाई करने से सरसों की फसल अच्छी तरह और जल्दी बढ़ती है। रसायनों द्वारा नियंत्रण करने पर बुआई से पूर्व फ्लूक्लोरेलिन (45 ई.सी.) की 2.20 लीटर प्रति हैक्टर 600-800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। अन्यथा बुआई के बाद परन्तु अंकुरण से पूर्व पेन्डीमेथिलिन (30 ई.सी.) 3.30 लीटर प्रति हैक्टर की दर से 600 से 800 लीटर पानी में अच्छी प्रकार मिलाकर छिड़काव करें। बुआई के 15 से 20 दिनों के अन्दर घने पौधों को निकालकर उनकी आपसी दूरी 15 सें.मी. कर देना आवश्यक है।
- सरसों में सिंचाई जल की उपलब्धता के आधार पर करें। यदि एक सिंचाई उपलब्ध हो तो 50-60 दिनों की अवस्था पर करें। दो सिंचाई उपलब्ध होने की अवस्था पहली सिंचाई बुआई के 40-50 दिनों बाद एवं दूसरी 90-100 दिनों बाद करें। यदि तीन सिंचाई उपलब्ध हैं, तो पहली 30-35 व अन्य दो 30-35 दिनों के अंतराल पर करें। बुआई के लगभग 2 दिनों के बाद जब फलियों में दाने भरने लगें उस समय दूसरी सिंचाई करें।
- सरसों कुल की फसलों पर लगभग तीन दर्जन से भी अधिक हानिकारक कीटों का आक्रमण होता है। इसमें से माहूं एवं आरा मक्खी आदि मुख्य कीट हैं। माहूं कीट लगभग 35 से 70 प्रतिशत तक उपज में हानि एवं 5 से 10 प्रतिशत तक तेल की प्राप्ति में कमी करता है। जब कीट का प्रकोप औसतन 25 कीट प्रति पौधा या 10 प्रतिशत पौधों पर हो जाए तो इनमें से

सरसों

किसी एक कीटनाशक का प्रयोग जैसे मोनोक्रोटोफॉस 35 डब्ल्यू.एस.सी. या इमिडाक्लारोप्रिड (17.8 प्रतिशत) का 20-25 ग्राम सक्रिय तत्व/हैक्टर या डाइमेथोएट 30 ई.सी. या मिथाइल डिमेटान 25 ई.सी. या क्यूनलफॉस 25 ई.सी. या फॉस्फोमिडान 85 डब्ल्यू.एस. सी. 250 मि.ली. या थायामिडान 25 ई.सी. 1000 मि.ली. प्रति हैक्टर की दर से 600-800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

- शेष आधी नाइट्रोजन की मात्रा का भी उपयोग सिंचाई के बाद करना होता है।

शीतकालीन मक्का

- मक्का की बुआई के 20-25 दिनों बाद पहली निराई-गुड़ाई करके सिंचाई कर दें। पुन: समुचित नमी बनाये रखने के लिए समय-समय पर सिंचाई करते रहें। रबी मक्का में प्राय 4-6 सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। बुआई के लगभग 30-35 दिनों बाद पौधों की घुटने तक की ऊंचाई होने पर प्रति हैक्टर 87 कि.ग्रा. यूरिया की प्रथम टॉप ड्रेसिंग व इतनी ही मात्रा की दूसरी टॉप ड्रेसिंग नरमंजरी निकलने से पूर्व करनी चाहिए। ध्यान रहे कि खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।
- मक्का के खेत को शुरू के 45 दिनों तक खरपतवार रहित रखना चाहिए। इसके लिए 2-3 निराई-गुड़ाई पर्याप्त रहती हैं। खरपतवारों के रासायनिक नियंत्रण के लिए एट्राजिन की 1-1.5 कि.ग्रा./हैक्टर मात्रा का छिड़काव करके भी इसे नियंत्रित किया जा सकता है। एट्राजिन की आवश्यक मात्रा को 800 लीटर पानी में घोल बनाकर बुआई के बाद परंतु जमाव से पहले छिड़क देनी चाहिए।

मक्का पीईएमएच-5

- मक्का में वृंत भेदक एक मुख्य कीट है। यह मक्का को शुरू की अवस्था में प्रभावित करता है। यदि पत्तियों पर छोटे छिद्र दिखाई दें तो बिना देरी किए 4 प्रतिशत कार्बोफ्यूरॉन दानों को प्रभावित पौधों में डालना चाहिए। कभी-कभी मक्का की फसल को कुछ कीट जैसे पायरिला, आर्मीवर्म, कटवर्म आदि नुकसान पहुंचाते हैं। इनकी रोकथाम भी मोनोक्रोटोफॉस के छिड़काव से की जा सकती है।

ध्यान देने वाली बात यह है कि अधिक सिंचाई जल और नाइट्रोजन का प्रयोग न करें। अधिक पानी और नाइट्रोजन का प्रयोग करने से कई प्रकार के रोग जैसे सफेद रतुआ, मृदु रोमिल असिता और तना गलन से पैदावार और तेल की गुणवत्ता में गिरावट आ जाती है। सफेद रतुआ एवं अल्टरनेरिया/काला धब्बा के लक्षण दिखाई देने पर 0.2 प्रतिशत डाइथेन एम-45, मैन्कोजेब या रिडोमिल का छिड़काव करना चाहिए। यदि आवश्यकता पड़े तो 10-15 दिनों के अंतराल पर एक और छिड़काव कर सकते हैं।

- तोरिया में दाना झड़ने की संभावना रहती है। इसलिए सही समय पर इसकी कटाई कर खेत को अगली फसल के लिए तैयार करें। तोरिया के बाद पछेती गेहूं, गन्ना, प्याज आदि फसलें उगाई जा सकती हैं। चारा फसलों के साथ 10 प्रतिशत भाग पर सरसों के बीज जो मिश्रित कर बोए गए थे, उनकी कटाई आवश्यक रूप से करनी चाहिए। अन्यथा सरसों की अधिक बढ़वार चारा फसलों की पैदावार को घटा देती है।

गन्ने की फसल

- तापमान कम होने के कारण दिसंबर-जनवरी में काटे गये गन्ने की जड़ से फुटाव कम होता है। दिसंबर-जनवरी में गन्ने की कटाई जमीन की सतह से सटाकर करें। गन्ना काटने के तुरंत बाद ठूंठों पर 2,4-डीई खरपतवारनाशक की मात्रा को 500-600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। गन्ने की सूखी पत्तियों की 15-20 सें.मी. मोटी तह सतह के ऊपर बिछा दें। इससे फुटाव अधिक होगा।
- शरदकालीन गन्ने में पिछले महीने सिंचाई नहीं की है, तो सिंचाई आवश्यकतानुसार करते रहें। इससे गन्ना सूखने नहीं पायेगा और वजनी भी बनेगा। गन्ने के साथ तोरिया, राई, वगैरह की बुआई की है तो निराई-गुड़ाई करें। दिसंबर में गन्ने की लगभग सभी किस्में कटाई के लिए तैयार हो जाती हैं। पुराने गन्ने की कटाई का कार्य जमीन से मिलाकर करें।
- खेत की तैयारी के समय अवशेषों को निकालकर नष्ट कर दें। शरदकालीन गन्ने में सरसों, धनिया की अंत:फसल लगायें तथा ट्राइकोडर्मा की 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

गन्ना को.शा.-08272

बरसीम, रिजका और जई

- ध्यान रहे कि प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से यूरिया की टॉप ड्रेसिंग फसल की बढ़वार के लिए अवश्य करें। यदि फसल 50-55 दिनों की हो गई है तो पहली कटाई कर लें। पहली कटाई करते समय ध्यान रहे कि कटाई 5-6 सें.मी. ऊपर से की जाये ताकि बाद में

बरसीम-जे.बी.-1

वृद्धि अच्छी हो। इसके बाद 20-30 दिनों के अंतराल पर कटाई करें। बरसीम की फसल में यदि तना विगलन रोग के लक्षण दिखें तो बहुकटाई वाली फसलों की कटाई समय पर करें। बरसीम, जई, रिजका और सेंजी की फसलें बढ़वार लेकर कटाई योग्य हो जाती हैं।

- जई की बुआई के 55-60 दिनों बाद जई की चारे के लिए कटाई करें। जई की बुआई के 20-25 दिनों बाद पहली सिंचाई करें। उसके बाद 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से टॉप ड्रेसिंग करें। चारे के लिए जई की फसल में 20-25 दिनों के अंतराल

जई-केन्ट

पर सिंचाई करते रहें। कटाई 8-10 सें.मी. जमीन के ऊपर करने से कल्ले निकलते हैं। बीज लेने के लिए पहली कटाई के बाद फसल छोड़ दें।

- पुराने स्थापित चारा वृक्ष से प्रजाति के अनुसार 20-30 प्रतिशत कटाई-छंटाई कर हरा चारा प्राप्त करें। नए रोपित चारा वृक्षों की देखरेख करें। सूखे घास के बंडल को पशु चारा के रूप में प्रयोग करें। प्राकृतिक चरागाह में क्रमबद्ध चराई कराएं।

सब्जी वाली फसलों का उत्पादन एवं प्रबंधन

- रबी मौसम की महत्वपूर्ण सब्जी फसलों में गोभीवर्गीय, टमाटर, आलू, मिर्ची, मेथी, गाजर एवं पालक आदि प्रमुख फसलें खेत में अपनी बढ़वार की अवस्था में होती हैं। साथ ही खेत में तैयार गाजर, मूली, शलजम, पालक एवं मेथी आदि समय पर तुड़ाई कर बाजार में भेजते रहें। इसमें सिंचाई

टमाटर का स्वस्थ पौधा

टमाटर की उन्नत प्रजाति

प्रबंधन के साथ खरपतवार नियंत्रण व पोषक प्रबंधन भी अति आवश्यक हो जाता है।

- टमाटरवर्गीय सब्जियां हमारे देश में खेती की प्रमुख सब्जी फसलें हैं। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में टमाटर की बसन्त-ग्रीष्म ऋतु की फसल के लिए पौधशाला में बीज की बुआई कर दें। दिसंबर से जनवरी में, तैयार पौध की रोपाई करें। इसके लिए उपयुक्त किस्में/संकर किस्में जैसे पूसा हाइब्रिड-1, पूसा उपहार, पूसा-120, पूसा शीतल, पूसा सदाबहार प्रमुख हैं।
- उचित जल निकास वाली रेतीली दोमट या दोमट भूमि जिसमें पर्याप्त मात्रा में जीवांश उपलब्ध हों, टमाटर की खेती के लिए उपयुक्त होती है। इसके लिए जल निकास व्यवस्था होना आवश्यक है। टमाटर की उन्नत किस्मों के लिए 350-400 ग्राम तथा संकर किस्मों के लिए 200-250 ग्राम बीज/हैक्टर खेत की रोपाई के लिए पर्याप्त है। सीमित बढ़वार वाली प्रजातियों की रोपाई 60×60 सें.मी. तथा असीमित बढ़वार वाली किस्मों की रोपाई 75-90×60 सें.मी. की दूरी पर बनी कतारों में करें एवं पौधे से पौधे की दूरी 45 से 60 सें.मी. रखते हुए, शाम के समय करें।
- रोपाई से पहले गोबर या कम्पोस्ट की अच्छी सड़ी खाद 20-25 टन प्रति हैक्टर की दर से भूमि में अच्छी तरह मिला लें। टमाटर की उन्नत किस्मों में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन व संकर असीमित बढ़वार वाली किस्मों के लिए 55-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की प्रथम टॉप ड्रेसिंग

प्याज और लहसुन

- प्याज व लहसुन सब्जियों की प्रमुख फसलें हैं। प्याज की फसल में खेत की तैयारी के समय रोपाई से तीन-चार हफ्ते पहले प्रति हैक्टर 250-300 क्विंटल गोबर की सड़ी खाद या 70-80 क्विंटल नाडेप कम्पोस्ट मिला दें। फिर रोपाई के पहले 60-70 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 70 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर प्रयोग करें।

लहसुन यमुना सफेद

- रबी मौसम के लिए पूसा व्हाईट राउंड, पूसा माधवी, व्हाईट फलैट, पूसा रेड, अर्ली ग्रेनो, पूसा रतनार, एन-2-4-1, एग्रीफाइंड लाईट रेड एवं पहाड़ी क्षेत्रों के लिए: ब्राउन स्पैनिश व अर्ली ग्रेनो आदि प्याज की प्रमुख किस्में हैं।
- प्याज की रोपाई दिसंबर के अंत से 15 जनवरी तक करनी चाहिए। प्याज की रोपाई के लिए 7-8 सप्ताह पुरानी पौध का प्रयोग करें। रोपाई के समय पंक्ति से पंक्ति की दूरी 15 सें.मी. तथा पौध से पौध की दूरी 10 सें.मी. रखनी चाहिए। प्याज में खरपतवार नियंत्रण के लिए रोपाई के दो-तीन दिनों बाद पेन्डीमेथेलीन की 3.5 लीटर मात्रा 800-1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से रोपाई के बाद सिंचाई से पहले छिड़काव करें।

प्याज पूसा रेड

- लहसुन की फसल में आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई तथा सिंचाई करें एवं 74 कि.ग्रा. यूरिया की प्रथम टॉप ड्रेसिंग बुआई के 40 दिनों बाद व इतनी ही मात्रा की दूसरी टॉप ड्रेसिंग बुआई के 60 दिनों बाद कर दें। दो से तीन निराई खरपतवार नियंत्रण के लिए पर्याप्त हैं।

फूलगोभी एवं बंदगोभी

रोपाई के 20-25 दिनों बाद तथा इतनी ही मात्रा की दूसरी टॉप ड्रेसिंग रोपाई के 45-50 दिनों बाद करनी चाहिए।

- अंत:सस्य क्रियाओं से अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिए हल्की निराई-गुड़ाई करें। पौधों की जड़ों के पास मिट्टी चढ़ा दें। टमाटर की असीमित बढ़वार वाली प्रजातियों में सहारा न प्रदान करने से पौधों की वृद्धि व उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। मृदा के संपर्क में फल आने से विभिन्न रोगों के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं।
- अच्छी फसल के लिए खरपतवार का नियंत्रण करना अत्यंत आवश्यक है। खेतों में खरपतवार नियंत्रण करते समय खुर्पी या कुदाल से गुड़ाई कर देने से पौधों की बढ़वार अच्छी होती है। सूखे घास-फूस की पलवार अथवा पुआल (मल्च) पौधों के नीचे बिछाने से

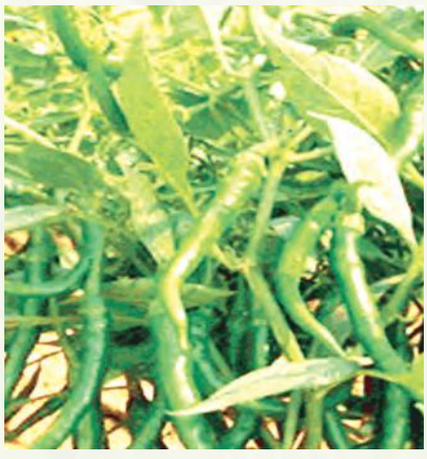

हरी मिर्च

बढ़वार के साथ-साथ खरपतवार का नियंत्रण भी हो जाता है।

- टमाटर एवं मिर्च में झुलसा रोग की रोकथाम के लिए स्वस्थ बीजों का प्रयोग करें। फसलचक्र में, गैर सोलनेसी कुल के पौधों का उपयोग करें। फफूंदनाशक रसायन में मैंकोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर, जिनेब 2 ग्राम प्रति लीटर, साइमोक्सानिल + मैंकोजेब 1.5-2 ग्राम या एजोक्सीस्ट्रॉबिन 1 ग्राम प्रति लीटर पानी के साथ छिड़काव अवश्य करें।

शिमला मिर्च पूसा दिप्ती

- फूलगोभी की किस्म पूसा पौषजा दिसंबर-जनवरी (15-20^0 सेल्सियस तापमान) में तैयार होने वाली मध्य-पछेती प्रजाति, फूल सफेद, ठोस, वजन लगभग 900 ग्राम, रोपाई के 85 दिनों बाद तैयार, अंत में 20-25 दिनों तक उपलब्ध एवं औसत उपज 300-350 क्विंटल/हैक्टर है।
- फूलगोभी की किस्म पूसा शुक्ति मध्यम पछेती (दिसंबर-जनवरी) परिपक्वता समूह (तापमान 15-20^0 सेल्सियस), गठीले सफेद फूल, रोपण के 75-80 दिनों उपरांत परिपक्वता एवं औसत उपज 400-440 क्विंटल/हैक्टर है।
- फूलगोभी की किस्म पूसा हाइब्रिड 2 नवंबर-दिसंबर (15-20^0 सेल्सियस तापमान) में तैयार होने वाली मध्य अगेती प्रजाति, पौधे मध्यम, कम सीधे, फल सफेद, जुलाई अंत में बुआई के लिए उपयुक्त, डाउनी मिल्ड्यू प्रतिरोधी, रोपाई के 80 दिनों बाद तैयार एवं औसत उपज 230 क्विंटल/हैक्टर है।
- पछेती फूलगोभी में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, गांठगोभी में 34 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की प्रथम टॉप ड्रेसिंग रोपाई के 20-25 दिनों बाद तथा इतनी ही मात्रा की दूसरी टॉप ड्रेसिंग रोपाई के 45-50 दिनों बाद करनी चाहिए।
- बंद गोभी में खरपतवारनाशी पेंडीमेथिलीन या वासालीन का छिड़काव रोपाई से एक-दो दिनों पहले करें। इसके पश्चात तुरंत हल्की सिंचाई करें। फसल बढ़वार के समय पूर्ण नमी बनायें रखें तथा आवश्यकतानुसार समय-समय पर सिंचाई अवश्य करें। सामान्यत: गोभीवर्गीय फसलों में जड़ों के पास मिट्टी चढ़ाना लाभदायक है।
- पछेती आलू में सिंचाई करें और बुआई के 25 दिनों बाद 87 कि.ग्रा. यूरिया प्रति हैक्टर की दर से टॉप ड्रेसिंग करके मिट्टी चढ़ायें। पहाड़ी इलाकों में आलू के खेत में निराई-गुड़ाई करें। नाइट्रोजन की बाकी बची एक तिहाई मात्रा यूरिया या कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट के रूप में खेत में डालकर मोटी मेड़ बनाकर मिट्टी चढ़ाएं। सब्जियों को पाले से बचाने के लिए धुऐं का प्रबंध करें।
- आलू की फसल में जरूरत के मुताबिक 10-15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहें। खेत में पर्याप्त नमी बनाए रखना आवश्यक है। फसल की प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार नियंत्रण के लिए सिंचाई के बाद मिट्टी चढ़ानी चाहिए। पछेती आलू में दिसंबर तथा

आलू

मूली

उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में मूली की यूरोपियन प्रजातियां जैसे पूसा हिमानी, व्हाइट आइसकिल, रैपिड रेड व्हाइट टिप्ड एवं इस्कारलेट ग्लोब आदि की बुआई

अक्टूबर से जनवरी तक कर सकते हैं। बुआई के समय खेत में नमी अच्छी प्रकार से होनी चाहिए। इसकी बुआई या तो छोटी-छोटी समतल क्यारियों में या 30-45 सें.मी. की दूरी पर बनी मेड़ों पर करते हैं। बीज जमने के बाद पौधों की दूरी 6-7 सें.मी. रखते हैं। शरदकालीन फसल में 10-15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। मेड़ों पर सिंचाई हमेशा आधी मेड़ पर करनी चाहिए ताकि पूरी मेड़ भुरभुरी व नमीयुक्त बनी रहे।

जनवरी में अधिक ठंड की आशंका होने पर फसल की सिंचाई कर देनी चाहिये। जमीन गीली रहने पर पाले का असर कम हो जाता है।

- लगातार बादल रहने एवं नमी की परिस्थिति में झुलसा रोग एवं माहू कीट आने कि संभावना रहती है। रोगों से बचाव के लिए शुरूआती अवस्था में ही मेंकोजेब का 0.2 प्रतिशत घोल अथवा रिडोमिल 2 ग्राम तथा फॉस्फेमिडान 0.6 मि.मी. प्रति लीटर पानी में मिलाकर 10-12 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें। यदि आसमान में बादल छाए हैं, नमी है तो सायमोक्जेनिल 8 फीसदी व मेंकोजेब 64 फीसदी को मिलाकर छिड़काव करें। अधिक प्रकोप होने पर 10-12 दिनों के अंतराल पर दोबारा छिड़काव किया जा सकता है।
- मिर्च की फसल में शीर्षमरण (डाईबैक) एवं फल सड़न रोग दिखाई दे तो, इसकी रोकथाम के लिए लिए कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। क्लोरोथैलोनील 1.5 ग्राम प्रति लीटर या डाईफेनोकोनाजोल 1.0 ग्राम प्रति लीटर या प्रोपिनेब 3.5 ग्राम प्रति लीटर या टेबुकोनाजोज 1.0 ग्राम प्रति लीटर या एजोक्सी स्ट्रोबिन 1.0 ग्राम प्रति लीटर की दर से पानी के साथ मिलाकर छिड़काव करें।
- शिमला मिर्च के लिए बुआई अक्टूबर व रोपाई दिसंबर-जनवरी में उपयुक्त है। रोपाई की दूरी किस्म पर निर्भर करती है। सामान्यत: पंक्ति से पंक्ति की दूरी व पौधे से पौधे की दूरी 45 सें.मी. पर्याप्त है। खेत की तैयारी के समय प्रति हैक्टर 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 100 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 100 कि.ग्रा. पोटाश डालें। रोपाई के 30-35 दिनों बाद खड़ी फसल में 50

धनिया

कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

- दाल वाली सब्जियों में मटर एक प्रमुख फसल है। सब्जी मटर में बुआई के 25-30 दिनों बाद सम्पूर्ण आवश्यक

सब्जी मटर

नाइट्रोजन की आधी मात्रा अर्थात 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन टॉप ड्रेसिंग के रूप में देनी चाहिए। सब्जी मटर में फूल आने के समय आवश्यकतानुसार हल्की सिचांई कर दें। उसके बाद 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन टॉप ड्रेसिंग के रूप में प्रयोग करें व दूसरी सिंचाई फलियां बनते समय करनी चाहिए। अधिक मात्रा में पानी लगाने से मटर के पौधों में श्वसन क्रिया प्रभावित होती है। फुहारा विधि से सिंचाई ज्यादा लाभप्रद होती है और पानी की बचत होती है।

- सब्जी मटर के लिए 1-2 निराई-गुड़ाई की आवश्यकता होती है। रासायनिक खरपतवार 3.0 पेन्डीमेथिलीन 800-1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। खरपतवारनाशी का प्रयोग करते समय मृदा में पर्याप्त मात्रा में नमी होनी चाहिए। इनसे काफी हद तक खरपतवार नियंत्रण किया जा सकता है। फलियों की तुड़ाई सुबह या शाम के समय की जानी चाहिए। सामान्यत: लगभग 12-15 दिनों के अंतर पर कुल 3-4 तुड़ाई की जाती हैं।
- चूर्णिल आसिता रोग की रोकथाम के लिए रोगरोधी किस्म का चयन करना लाभदायक होता है। केलिक्सीन 0.5 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी या पेन्कोनाजोल 1 मि.ली. दवा प्रति 4

गाजर

चप्पन कद्दू

लीटर पानी में घोलकर 10 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करें या फ्लूसिलाजोल 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। घुलनशील गंधक का चूर्ण 3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी की दर से एक हैक्टर खेत में लगभग 600-800 लीटर पानी की आवश्यकता पड़ती है।

- गाजर की किस्म पूसा यमदग्नि, पूसा नयनज्योति एवं नैन्ट्स दिसंबर से फरवरी में बुआई कर सकते हैं। यह बुआई के 75-80 दिनों बाद तैयार हो जाती है एवं औसत उपज 200-250 क्विंटल/हैक्टर है।
- मिर्च, मटर, राजमा, सेम और शिमला मिर्च में समयानुसार एक हल्की सिंचाई का प्रबंध करें।
- फ्रेंचबीन में बुआई के लगभग 30 दिनों बाद 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की टॉप ड्रेसिंग करें। फ्रेंचबीन में पहली सिंचाई फूल आने के ठीक पहले तथा दूसरी सिंचाई फली बनते समय करनी चाहिए।
- यदि लो टनल की सुविधा हो तो दिसंबर में भी बुआई की जा सकती है। चप्पन कद्दू की बुआई इस महीने की जा सकती है। इसकी ऑस्ट्रेलियाई ग्रीन किस्म से लगभग 250-300 क्विंटल प्रति हैक्टर तक उपज प्राप्त होती है। तथा पूसा अलंकार भी एक अच्छी किस्म है। इसकी पैदावार 450 क्विंटल प्रति हैक्टर है शेष नाइट्रोजन की आधी मात्रा बुआई के 20 व 35 दिनों बाद पौधों की जड़ों के पास देकर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए।
- धनिया के पौधे 3-4 सें.मी. के हो जाने पर प्रति हैक्टर 15 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की टॉप ड्रेसिंग कर दें। 15 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की दूसरी टॉप ड्रेसिंग पहली टॉप ड्रेसिंग के 20-25 दिनों बाद करें।
- पत्तीदार सब्जियां पोषण की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। ये आयरन, कैल्शियम, फॉस्फोरस, सोडियम, पोटेशियम, रेशे तथा विटामिन ए, सी के अच्छे स्रोत हैं। पालक व मेथी में पत्तियों की प्रत्येक कटाई के बाद प्रति हैक्टर 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की टॉप ड्रेसिंग एवं सिंचाई करें।
- सरसों की किस्म पूसा साग-1 की पहली कटाई बुआई के 35 दिनों बाद शुरू हो जाती है। जनवरी के आखिर तक इसकी कटाई की जा सकती है।
- खीरावर्गीय सब्जियों को इसमें पॉलीहाउस तकनीक द्वारा सर्दी से बचाव कर अच्छी फसल ले सकते हैं। इस समय बाजार में इन फसलों के दाम भी अच्छे मिलते हैं। इसके लिए इस महीने में पॉलीहाउस में बे-मौसमी नर्सरी लगाई जा सकती है। 50 वर्ग मीटर वाले पॉलीहाउस को बनाने के लिए अनुमानित 11,000 रुपये का खर्च आता है। इसमें अन्य बे-मौसमी सब्जी जैसे खीरा, चप्पन कद्दू, फ्रेंचबीन, टमाटर, लौकी आदि की फसलें भी उगाई जा सकती हैं।

बागवानी फसलों का उत्पादन एवं प्रबंधन

- आवश्यकतानुसार पौधों में नियमित सिंचाई करें। अमरूद में सिंचाई प्रबंधन के साथ-साथ तैयार फलों की सही समय पर तुड़ाई कर बाजार भेजें या प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन के लिए इनको ठीक प्रकार से प्रयोग करें। फल-मक्खी के नियंत्रण के लिए साइपरमेथ्रिन 2.0 मि.ली. प्रति

अमरूद

लीची

लीटर या मोनोक्रोटोफॉस 1.5 मि. ली. प्रति लीटर की दर से पानी में घोल बनाकर फल परिपक्वता के पूर्व 10 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करें। प्रभावित फलों को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए। बगीचे में फल मक्खी के वयस्क नर को फंसाने के लिए फेरोमोन ट्रेप लगाने चाहिए।

- आवश्यकतानुसार पौधों में नियमित सिंचाई करें। आम के बागों की साफ-सफाई करें। 10 साल या इस से ज्यादा उम्र के पेंड़ो में प्रति पेड़ 750 ग्राम फॉस्फोरस, 1 कि.ग्रा. पोटाश थालों में दें। मिलीबग कीट की रोकथाम के लिए तने के चारों तरफ 2 फुट की ऊंचाई पर 4 सौ गेज वाली 30 सें.मी. पॉलीथीन की शीट की पट्टी बाधें। आम में गुच्छा रोग से ग्रसित पुष्प गुच्छों को इसमें नष्ट कर उपचार करें। आम में मिली बग से बचने के लिए रोग निरोधक के तौर पर तने के निचले हिस्से में 20 सें.मी. 400 गेज की पॉलीथीन को ग्रीस के साथ लगा देना चाहिए।
- आम के बागानों में उत्तम परागण के लिए मधुमक्खी-पालन के डिब्बों को लगाना चाहिए। इससे फल का विकास भी अच्छा होता है।

आम

पुष्प व सगंध पौधों का प्रबंधन

- देशी गुलाब में आंख बडिंग और सिंचाई एवं निराई-गुड़ाई करें।
- रजनीगंधा की अनियमित बहार की कटाई-छंटाई, पैकिंग एवं विपणन करें।
- ग्लैडियोलस में आवश्यकतानुसार सिंचाई एवं निराई-गुड़ाई करें। मुरझाई टहनियों को निकालते रहें और बीज न बनने दें। ग्लैडियोलस की पत्तियों पर काले धब्बे रोग की रोकथाम के लिए 0.2 प्रतिशत कैप्टॉन का घोल बनाकर छिड़काव करें। चौफर कीट से बचाव के लिए खेत की तैयारी के समय 20-25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर थिमेट-10 जी या कार्बोफ्यूरॉन के ग्रेन्यूलस मिला लें। यदि चेंपा एवं थ्रिप्स का प्रकोप है तो उससे बचाव के लिए 0.2 प्रतिशत मेटासिड-50 दवा का घोल बनाकर छिड़काव करें।
- नर्गिस का फूल सर्दियों में उगने वाला खुशबूदार कंदीय फूल है।
- बाजार मांग के आधार पर लंबी पुष्प दंडिका या उच्च क्वालिटी गुणवत्ता के पुष्पों का उत्पादन करके अधिक आय बढ़ाई जा सकती है। आमदनी बढ़ाने के लिए उन्नत किस्मों का चयन बहुत ही आवश्यक है। सर्दियों में उगने वाले पुष्पीय पौधों के लिए सितंबर-अक्टूबर में बीजारोपण करें।

गुलाब

रजनीगंधा

ग्लैडियोलस

- मधुआ कीट एवं पाउडरी मिल्ड्यू के नियंत्रण के लिए मंजर निकलने के समय बाविस्टिन या कैराथेन (0.2 प्रतिशत) तथा मोनोक्रोटोफॉस या इमिडाक्लोप्रिड (0.05 प्रतिशत) का पहला एहतियाती छिड़काव करें।
- लीची में मिलीबग/कड़ी कीट के नियंत्रण के लिए प्रति वृक्ष 200-250 ग्राम मिथाइल पैराथियान का बुरकाव पेड़ के एक मीटर के घेरे में कर दें। फिर पेड़ के तने पर जमीन से 30-40 सें.मी. की ऊंचाई पर 400 गेज वाली एल्काथीन की 30 सें.मी. चौड़ी पट्टी सुतली आदि से कसकर बांध दें। उसके दोनों सिरों पर गीली मिट्टी या ग्रीस से लेपकर दें, ताकि मिलीबग नीचे से ऊपर पेड़ पर न चढ़ पाये। मंजर आने के 30 दिनों पहले पौधों पर जिंक सल्फेट (2 ग्राम प्रति लीटर) के घोल का पहला एवं 15 दिनों बाद दूसरा छिड़काव करने से मंजर एवं फूल अच्छे होते हैं।
- आंवले की फसल में तुड़ाई उपरांत फलों को डाइफोलेटान (0.15 प्रतिशत), डाइथेन एम-45 या बाविस्टीन (0.1 प्रतिशत) से उपचारित करके भण्डारित करने से रोग की रोकथाम की जा सकती है।
- आंवला, अमरूद, केला, पपीता, बेर, नीबू, हल्दी और अदरक आदि की आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें। आंवला के फलों की तुड़ाई एवं विपणन की व्यवस्था करें।
- बेर के फलों को गिरने से रोकने के लिए सुपरफिक्स हार्मोन 1.1 मि.ली. प्रति 4.5 लीटर की दर से पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- अम्बे बहार अनार के पोषक तत्व प्रबंधन के लिए 600-700 ग्राम नाइट्रोजन, 200-250 ग्राम फॉस्फोरस और 200-250 ग्राम पोटाश प्रति पेड़ प्रति वर्ष प्रयोग करना चाहिये।
- पपीते की फसल में वृक्षारोपण के छः महीने के बाद प्रति पौधा उर्वरक देने चाहिए। नाइट्रोजन 150 -200 ग्राम, फॉस्फोरस 200-250 ग्राम, पोटेशियम 100-150 ग्राम। तीनों उर्वरक 2-3 खुराक में वृक्ष लगाने से पहले, फूल आने के समय तथा फल लगने के समय दे देना चाहिए।
- पुराने बागों में अंतरा सस्य के रूप में हल्दी व अदरक की फसल में आवश्यकतानुसार सिंचाई करें।
- इस समय पाला पड़ने की पूरी संभावना होती है। फलदार पौधे जो कि पाले के लिए बहुत संवेदनशील होते हैं उन बागानों में बचाव के उपाय करने चाहिए। पाला प्रबंधन शुरू की अवस्था यानी नए बागानों में अधिक जरूरी होता है। सिंचाई के साथ-साथ, घास-फूस अथवा फसल अवशेष या पॉलीथीन से नए छोटे पौधों को ढककर रखना चाहिए। पाले से बचने के लिए सल्फरयुक्त रसायन जैसे डाई मिथाईल सल्फो ऑक्साइड का 0.2 प्रतिशत अथवा 0.1 प्रतिशत थायो यूरिया का छिड़काव लाभप्रद होता है।

आंवला

पपीता

(आवरण पृष्ठ II का शेष...)

कृषि में धन व समय दोनों की बचत होती है। जैव विविधता बढ़ने से मीथेन गैस के उत्सर्जन को कम किया जा सकता है। बढ़ती हुई जनसंख्या एवं उसकी खाद्य आपूर्ति को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि प्रति इकाई क्षेत्रफल में उत्पादन को बढ़ाए जाने के साथ ही उत्पादन को टिकाऊ भी रखा जाए। हरित क्रांति के बाद उत्पादन में वृद्धि वर्ष दर वर्ष बढ़ रही है। विभिन्न रसायनों के असंतुलित एवं अंधाधुंध उपयोग से पर्यावरण पर भी इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। इसके अलावा वायुमंडलीय तापमान में वृद्धि हो रही है, भूमि ऊसर या अम्लीय हो रही है तथा फसलों के उत्पादन में गिरावट आ रही है। पौधे पोषक तत्वों का पूर्ण रूप से अवशोषण नहीं कर पाते हैं। साथ ही वनों के कटाव के कारण मृदा का क्षरण बढ़ता जा रहा है।

प्राकृतिक संसाधनों, विशेष रूप से भूमिगत एवं सतही जल का स्तर भी दिनोंदिन गिरता जा रहा है। इसके कारण हमें भविष्य में गंभीर परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं। रासायनिक उर्वरकों की उत्पादन लागत भी जीवाश्म ईंधनों तथा डीजल आदि के महंगे होने से बढ़ रही है। कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड आदि के उत्सर्जन के कारण वायुमंडलीय तापमान बढ़ रहा है। इसके परिणामस्वरूप सूखा और बाढ़ जैसी गंभीर समस्याओं में वृद्धि हो रही है। इन गंभीर और जटिल समस्याओं के स्थाई समाधान जरूरी हैं। भूमि की उत्पादकता को बनाए रखने तथा विश्व खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों जैसे पानी, मृदा और वायु आदि को सुरक्षित एवं संरक्षित करना आवश्यक है।

फसल विविधीकरण

- फसलों के विविधीकरण का प्राथमिक लक्ष्य संकट के दौरान गांवों में खाद्य सुरक्षा को बढ़ावा देना है।
- फसल विविधीकरण के द्वारा उत्पादन के जोखिम को कम कर किसानों की आय को बढ़ा सकते हैं। इससे अन्य सामाजिक और पर्यावरणीय लाभ भी ले सकते हैं।
- कृषक परिवार को वर्षभर रोजगार प्राप्त हो सकता है।
- क्षेत्र के मूल निवासियों के लिए कई प्रकार के फल व सब्जियां उपलब्ध होने से उनको बेहतर आहार मिलता है।
- फसल विविधीकरण में पर्यावरण के अनुकूल उत्पादन के तरीकों पर जोर दिया जाता है। यह किसानों को बदले में उत्पादकता बढ़ाने में मदद करती है।

महत्वपूर्ण बिंदु

- मृदा कार्बनिक पदार्थों का निर्माण हो और मृदा में उपस्थित जीव एवं वनस्पति मृदा में पर्याप्त मात्रा में मौजूद रहें।
- फसलों की जड़ों एवं जैविक जीवों जैसे राइजोबियम, कवकरोधी का पारस्परिक संबंध अच्छा रहे।
- मृदा सूक्ष्मजीव भी अपने क्षेत्र के लिए अन्य जीवाणुओं से प्रतियोगिता करते हैं।
- पलवार द्वारा तापमान एवं नमी का संरक्षण कर कीटाणुओं की संख्या एवं विविधता को बढ़ावा देने में मदद मिलती है।

जुताई के लाभ

- पिछले मौसम में बोई गई फसल अवशेषों को पुनः मृदा में मिलाने, खरपतवार को नष्ट करने, भूमि सुधारकों तथा कार्बनिक एवं अकार्बनिक खादों को मृदा में मिलाने में उपयोगी है।
- मृदा में मौजूद पोषक तत्वों को उपलब्ध कराने में मदद करती है।
- यह मृदा में पौधों की जड़ों के प्रवेश एवं फैलाव को बढ़ाती है। मृदा की जल ग्रहण एवं जलधारण क्षमता में वृद्धि होती है।
- मृदाजनित रोगों एवं कीटों के नियंत्रण के लिए यह एक अनिवार्य क्रिया है।
- अच्छी प्रकार से तैयार खेत में बीजों का अंकुरण ज्यादा होता है।

कृषि में जुताई से संरक्षण

संरक्षण जुताई से आशय है कम से कम छेड़छाड़ करके फसलोत्पादन करना, ताकि मृदा का क्षरण नगण्य हो। अतः सीधे बुआई और शून्य जुताई या मेड़ पर बुआई करनी चाहिए। सामान्यतः मृदा की सतह पर 20 से 30 प्रतिशत फसल अवशेष मौजूद रहते हैं। संरक्षण जुताई का तात्पर्य समय, ईंधन, मृदा जल, मृदा संरचना एवं मृदा के पोषक तत्वों को बचाए रखना है।

संरक्षण कृषि का उद्देश्य

कृषि संसाधनों के समन्वित प्रबंधन के माध्यम से उत्तम उपयोग कर उपलब्ध मृदा जल एवं जैविक संसाधनों का संयुक्त, सीमित एवं बेहतर उपयोग करना ही संरक्षण कृषि है। यह कार्बनिक मृदा की परत बनाए रखते हुए पर्यावरण संरक्षण के लिए टिकाऊ कृषि उत्पादन में योगदान देता है। शून्य या न्यूनतम जुताई, प्रत्यक्ष बुआई और विभिन्न फसलचक्र संरक्षित कृषि के महत्वपूर्व तत्व हैं।

संरक्षण कृषि के तीन प्रमुख सिद्धांत

- कृषि यंत्रों द्वारा मृदा को कम से कम प्रभावित करना
- मृदा पर स्थाई कार्बन परत
- फसलचक्र अपनाना, विशेष रूप से वार्षिक एवं बहुवर्षीय फसलों के लिए

संरक्षित कृषि के लाभ

संरक्षित कृषि द्वारा मृदा की जैविक क्रियाओं-मृदा रंध्रों, पोषक तत्वों का चक्रीकरण एवं मृदा की भौतिक तथा जैविक दशा में सुधार होता है। मृदा में उपस्थित जीवों का जीवन बड़ा ही आशंकित रहता है। ये जीव जुताई, कीटनाशक एवं अन्य हानिकारक जहरीले पदार्थों के प्रति संवेदनशील रहते हैं। पौधों की पोषक तत्वों की उपलब्धता एवं फसल उत्पादन भी मृदा की भौतिक, जैविक एवं रासायनिक क्रियाओं के साथ मृदा की उत्पादकता पर निर्भर करता है।

आने वाले दशकों में फसल उत्पादन में प्रकृति का कुशल उपयोग कर प्राकृतिक संसाधनों और पर्यावरण पर न्यूनतम प्रभाव के साथ कम भूमि से अधिक खाद्य उत्पादन व मांग के साथ तालमेल बनाए रखना आवश्यक है। अतः आने वाली पीढ़ी के लिए संसाधनों का संरक्षण बहुत जरुरी है।

पंजीकरण संख्या 14252/57 पंजीयक, समाचार पत्र, भारत सरकार
दिल्ली पोस्टल पंजीकृत संख्या DL(C)-12/1145/10-12
ISSN 0023-1088
मूल्य: ₹30

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के प्रकाशन

JOURNALS

HANDBOOKS

भाकृअनुप
ICAR

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें:
व्यवसाय प्रबंधक
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-I, पूसा, नई दिल्ली 110 012
टेलिफैक्स: 91-11-25843657; ई-मेल: bmicar@icar.org.in
वेबसाइट: www.icar.org.in

डा. सतेन्द्र कुमार सिंह, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली 110 092 से मुद्रित। सम्पादक: अशोक सिंह